योगविद्या

वर्ष 14 अंक 6
जून 2025

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2025

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट: भारत योग यात्रा, 2025

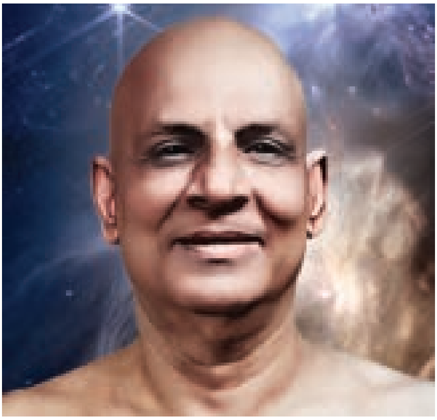

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

योग

योग का लक्ष्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास है, इसलिये समन्वित और सम्पूर्ण योग का अभ्यास करना चाहिए। हमारी अभिव्यक्ति बुद्धि, भावना और कर्म – इन तीन स्तरों पर होती है। हमें अपनी इन तीन क्षमताओं के विकास का भरपूर प्रयास करना चाहिए। तभी हमारा व्यक्तित्व पूरी तरह निखर सकेगा। जो योग हमारी बुद्धि, भावना और कर्म को विकसित करने में सहायता करता है, वही सम्पूर्ण योग है।

समत्व ही योग है। शान्ति ही योग है। कर्मों में कुशलता ही योग है। जिस किसी विधि से उत्कृष्ट, उत्तम जीवन की प्राप्ति हो, वही योग है। योग एक सार्वभौमिक विज्ञान है, जिससे शरीर, मन और आत्मा, तीनों का सर्वांगीण विकास होता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित

मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा

स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 14 अंक 6 जून 2025
(प्रकाशन का 63वाँ वर्ष)

विषय सूची

2 समन्वय-योग
7 योग – विश्व की संभावी संस्कृति
14 योग और योगविद्या
19 ज्ञानयोग का प्रयोजन
27 कर्मयोग की साधना
33 क्रियायोग के साधकों से
40 राजयोग और भक्तियोग का मूल लक्ष्य

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

समन्वय-योग

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

विद्वत्तापूर्ण तर्क या शब्द-जाल से आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त नहीं कर सकते। समन्वित योग की साधना द्वारा आपको अपनी बुद्धि, भावना और कर्म का सर्वांगीण विकास करना होगा। तभी आप पूर्णता प्राप्त कर सकेंगे।

'अहं ब्रह्मास्मि' अथवा 'शिवोऽहम्' का जप करना आसान है, परन्तु उसका अनुभव करना बड़ा कठिन है। सभी प्राणियों से एकता स्थापित करना बड़ा मुश्किल है। निष्काम-सेवा, जप, कीर्तन तथा उपासना के द्वारा जब तक मन के मल दूर न हो जाएँ, समाधि की संभावना नहीं है। मन के विक्षिप्त रहने पर आप ब्रह्म-भावना कैसे कर सकते हैं? दत्तात्रेय तथा याज्ञवल्क्य जैसे महात्मा ही वास्तव में वेदान्त साधना के अधिकारी हैं। जो देह-चेतना से ऊपर उठ गए हैं वे ही अधिकारपूर्वक कह सकते हैं कि 'यह जगत् मृग-मरीचिका अथवा स्वप्न ही है।' आप सभी रोटी-दाल ही हैं। आप चौबीसों घण्टे अन्नमय कोश में ही रहते हैं। चाय में चीनी या दाल में नमक कम हो तो आप अशान्त हो जाते हैं। ऐसे में 'शिवोऽहम्', 'अहं ब्रह्मास्मि' या 'सोऽहम्' का जप करना तो व्यर्थ ही है।

आप कल्पना करते हैं कि आप तुरीयावस्था को प्राप्त कर चुके हैं। आप समझते हैं कि आपने शरीर चेतना का अतिक्रमण कर लिया है, परन्तु यदि व्यावहारिक जाँच की गई तो आप गहरी विफलता प्राप्त करेंगे। भगवान बुद्ध की भी जाँच हुई थी, उन्हें प्रलोभित किया था। अन्य सभी साधु-संतों की परीक्षा हुई थी। वे सभी परीक्षा में विजयी निकले। यम-नियम के अभ्यास द्वारा पहले दृढ़ नींव का निर्माण कर लीजिए। अथक निष्काम्य सेवा तथा उपासना के द्वारा हृदय के शुद्ध हो जाने पर ही वेदान्त की इमारत खड़ी की जा सकती है। ईश्वर की कृपा द्वारा ही मन में अवस्थित सूक्ष्म वृत्तियों का विनाश सम्भव है। स्वार्थपरक साधना द्वारा आप करोड़ों जन्मों में भी मन के मल को दूर नहीं कर सकते। जिस व्यक्ति को भगवान अपने चरणों में लाना चाहता है, वह उसे पूर्ण तथा मुक्त बना डालता है। यह कठोपनिषद् की घोषणा है।

मनुष्य अद्वैत दर्शन पर कई घण्टों तक भाषण दे सकता है, एक ही श्लोक की सैकड़ों प्रकार से व्याख्या कर सकता है। गीता के एक ही श्लोक पर वह

सप्ताह तक भाषण दे सकता है, फिर भी उसमें रंचमात्र भक्ति या वेदान्त-साक्षात्कार नहीं हो सकता। यह सब शुष्क बौद्धिक व्यायाम है, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। वेदान्त तो जीवन्त अनुभव है। वेदान्ती को इसका विज्ञापन करने की आवश्यकता नहीं कि वह अद्वैती है। वेदान्तिक एकता की मधुर सुरभि सदा उससे निःसृत होती रहेगी। कोई भी व्यक्ति इसका अनुभव कर सकता है।

मन्दिर में किसी मूर्त्ति के समक्ष नमन करने में दम्भी वेदान्ती लज्जा का अनुभव करता है। वह सोचता है कि साष्टांग प्रणाम करने से उसका वेदान्तिक अनुभव वाष्पवत् विलीन हो जाएगा। अप्पर और सुन्दरर जैसे विख्यात तमिल संतों के जीवन-चरित्र को पढ़िये। उन्हें परम अद्वैत अनुभूति प्राप्त थी। वे सर्वत्र भगवान शिव के दर्शन करते थे। वे सभी शिव मन्दिरों में जाकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते थे। वे शिवजी की स्तुति करते थे। उनकी स्तुतियों का संग्रह आज भी पुस्तकों में उपलब्ध है। साठ नयनार सन्तों ने केवल चर्या तथा क्रिया का अभ्यास किया तथा साक्षात्कार प्राप्त कर लिया। वे मन्दिर के फर्श को साफ करते, फूलों का संग्रह करते, प्रभु के लिए माला बनाते तथा मन्दिर में दीप जलाते थे। उनके हृदय भक्ति से संतृप्त थे। वे कर्मयोग के मूर्त्तिमान स्वरूप थे। उन सब ने समन्वित योग का अभ्यास किया। मन्दिर की मूर्त्ति उनके लिए चैतन्य-स्वरूप थी, वह प्रस्तर-खण्ड मात्र न थी।

चाय की आदत को भी दूर करना कितना कठिन है। यह तो कुछ ही वर्षों से बनी हुई है। यदि एक दिन आप चाय न लें तो कब्ज और सिर-दर्द की शिकायत करने लगते हैं। आप कोई भी काम-काज करने में समर्थ नहीं होते। कितने दुर्बल बन गये हैं आप! फिर मन में गहरी गड़ी कुवृत्तियों का उन्मूलन करना कितना कठिन होगा! उन वृत्तियों ने पुनरावृत्ति के द्वारा कितना बल प्राप्त कर लिया है। वेदान्त का वक्ता बनना आसान है। यदि आप कुछ वर्षों तक किसी पुस्तकालय में बैठकर अपने शब्दकोष को बढ़ा लें तथा कुछ श्लोकों को याद कर लें तो आप सुन्दर भाषण दे सकेंगे। परन्तु किसी दुर्गुण को दूर करना उतना आसान नहीं है। सच्चा साधक ही इस कठिनाई को समझ सकता है।

आँखें बन्द कर लीजिए और जरा विचारिए, आपने अपने जीवन में कितने सत्कर्म किए हैं जिन्हें ईश्वर को अर्पित किया जा सके तथा जो वास्तव में ईश्वर को प्रसन्न कर सकें। हो सकता है कि कोई भी निष्काम कर्म न हो। कर्मयोग के अभ्यास के लिए अधिक धन की आवश्यकता नहीं है। मानव जाति की सेवा के लिए सिर्फ उदार हृदय की आवश्यकता है। यदि आप सड़क के किनारे किसी गरीब को पीड़ित देखें तो उसे अपनी पीठ पर बैठाकर अस्पताल में भर्ती करा दें। अपने पड़ोस के बीमार व्यक्ति की सेवा-शुश्रूषा करें। अस्पताल जाकर प्रेमपूर्ण हृदय से रोगी व्यक्तियों की सेवा करें। उनके स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करें। उनके सामने गीता का पाठ करें। इस प्रकार के कार्यों से आपका हृदय शुद्ध हो जाएगा तथा आप सभी प्राणियों में एकता का अनुभव करने लगेंगे। तब आप फूलों के साथ मुस्कुरायेंगे, वृक्षों, सरिताओं तथा पर्वतों के साथ बातें करेंगे। यदि आप निष्काम भाव से एक भी शुभ काम कर लें तो इससे आपका हृदय शुद्ध होगा तथा मन ईश्वर की ओर मुड़ेगा। आप ईश्वरीय ज्योति तथा कृपा की प्राप्ति के अधिकारी बन जाएँगे।

हृदय के मलों को दूर किए बिना बन्द कमरे में आँखें बन्द कर पद्मासन लगाकर ध्यान करने से आप समाधि नहीं प्राप्त कर सकते। आप हवाई किले बनाने लगेंगे या आप तन्द्रा अवस्था में रहेंगे। नादान साधक इन अवस्थाओं को ही भ्रमवश समाधि मान बैठता है। यह भारी भूल है। यदि कोई व्यक्ति आधे घण्टे के लिए भी गम्भीरतापूर्वक ध्यान कर ले तो वह महान् योगी हो जाए। वह हजारों में शक्ति, आनन्द तथा शान्ति का संचार करने लगेगा।

सच्चा वेदान्ती, जो सब के साथ एकता का अनुभव करता है, अपने लिए एक प्याला दूध भी नहीं रख सकता। जो कुछ भी उसके पास है, उसमें वह

दूसरों को भी हिस्सा देगा। पहले वह इसका पता लगा लेगा कि किसी बीमार आदमी को दूध की जरूरत तो नहीं है। वह दौड़ता हुआ वहाँ जाएगा तथा तुरन्त उसे दूध देगा और ऐसी सेवा में सुख का अनुभव करेगा। आजकल कुछ सेवा-निवृत्त लोग गंगा के तट पर निवास करते हैं। वे वेदान्त की कुछ पुस्तकें पढ़ लेते हैं तथा सोचते हैं कि अब जीवनमुक्त अवस्था प्राप्त हो गई है। वे अपने लिए ही धन व्यय करते हैं और शेष अपने पुत्रों के पास भेज देते हैं। उनके हृदय का विकास नहीं हुआ है। आध्यात्मिक मार्ग में उनकी रंचमात्र भी उन्नति नहीं हुई है, क्योंकि उनमें हृदय की विशालता या उदार वृत्ति नहीं है। वे उसी अवस्था में रहते हैं जिस अवस्था में वे पन्द्रह वर्ष पूर्व थे। यह खेद की बात है।

उन्हें एक वर्ष तक भिक्षा पर ही रहना चाहिए और अपनी सारी पेंशन से गरीबों की सेवा करनी चाहिए। वे एक वर्ष में ही आत्म-साक्षात्कार कर लेंगे। शीतकाल में दो मास तक उन्हें निर्धन की भाँति भ्रमण करना चाहिए। वे नम्र, कारुणिक तथा अधिक उदार बन जाएँगे। उनमें इच्छाशक्ति तथा सहनशीलता का विकास होगा। अपने भ्रमणकाल में वे ईश्वरीय कृपा के रहस्यों को समझ पायेंगे। ईश्वर में उनकी श्रद्धा दृढ़ हो जाएगी। वे भूख की ज्वाला तथा कंपकंपाती ठण्ढ का अनुभव करेंगे। तब वे समझ सकेंगे कि गरीब लोगों को कितना कष्ट होता है। वे गरीबों को कम्बल बाँटेंगे तथा भूखों को अन्न देंगे, क्योंकि उन्हें उनके दुःखों का ज्ञान रहेगा।

क्या आप चौबीसों घण्टे ध्यान कर सकते हैं? निश्चय ही नहीं। तब आप चौबीस घण्टे किस तरह बिताने जा रहे हैं? ध्यान के नाम पर तामसिक न बन जाइए। जब मन भटकने लगे, जब एकाग्रता का अभ्यास कठिन हो जाए तो कमरे के बाहर निकल आइए तथा कुछ उपयोगी सेवा में निरत हो जाइए। सेवा करते समय भी ध्यान के प्रवाह को बनाए रखिए अथवा कुछ मानसिक जप करते रहिए। ध्यान आपको प्रसन्न, अन्तर्मुखी, चिन्तनशील, बलवान्, शान्त, स्फूर्तिमान् तथा प्रखर बनायेगा। यदि आप में इन गुणों का अभाव है तो निश्चय ही आपके ध्यान में कुछ कमी है। सम्भवतः आप सतत् ध्यान योग के अधिकारी नहीं हैं। आपको ध्यान के साथ-साथ कर्मयोग का समन्वय करना होगा। तभी आपकी प्रगति होगी।

पक्षी दो पंखों के बिना उड़ नहीं सकता। दो पंख होने पर भी यदि पूंछ न हो, तो वह ठीक से उड़ नहीं सकता। पूंछ पक्षी को सन्तुलित रखती तथा उसकी सही दिशा को निर्धारित करती है। कर्म तथा ज्ञान को सन्तुलित रखने वाली

पूंछ भक्ति है। दो पंख कर्म तथा ज्ञान हैं। ज्ञान, भक्ति तथा कर्म परिपूर्णता की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं। इनसे बुद्धि, भावना तथा कर्म का विकास होगा, तथा आप अपने लक्ष्य तक पहुंच सकेंगे।

भगवान कृष्ण समन्वय-योग में पारंगत हैं। वे सारथी हैं। वे राजनीतिज्ञ हैं। वे संगीत-सम्राट् हैं। वे रासलीला के निपुण नर्तक हैं। वे महान् धनुर्धर हैं। वे कहते हैं, 'इन तीनों लोकों में ऐसी कोई चीज नहीं जो मेरा कर्तव्य हो। न कोई ऐसी वस्तु ही है जिसे मुझे प्राप्त करना है, फिर भी मैं कर्म में संलग्न रहता हूँ।' श्री शंकराचार्य, प्रभु ईसा मसीह, भगवान बुद्ध – ये सभी समन्वय-योग में निपुण थे।

ज्ञानयोग का मूल साधन-चतुष्टय में है। इसमें ब्रह्मज्ञान का फूल लगता है तथा मोक्ष या कैवल्य के फल की प्राप्ति होती है।

भक्ति का मूल श्रद्धा या आत्मार्पण में है। प्रेम का पुष्प खिलता है तथा ईश्वर-प्राप्ति या भाव-समाधि का फल लगता है।

राजयोग का मूल यम तथा नियम में है। एकाग्रचित्त का फूल लगता है तथा निर्विकल्प समाधि का फल लगता है।

कर्मयोग का मूल है आत्म-त्याग। चित्तशुद्धि तथा चित्त-विशालता हैं फूल, और ब्रह्मज्ञान का फल लगता है।

सत्य तथा ब्रह्मचर्य कुण्डलिनी योग के मूल हैं। मातृ-शक्ति की कृपा फूल है तथा शिव-योग की प्राप्ति फल है।

आसन तथा प्राणायाम हठयोग के मूल हैं। विश्रान्ति फूल है तथा कायसंपत, दीर्घायु एवं कुण्डलिनी-जागृति के फल लगते हैं।

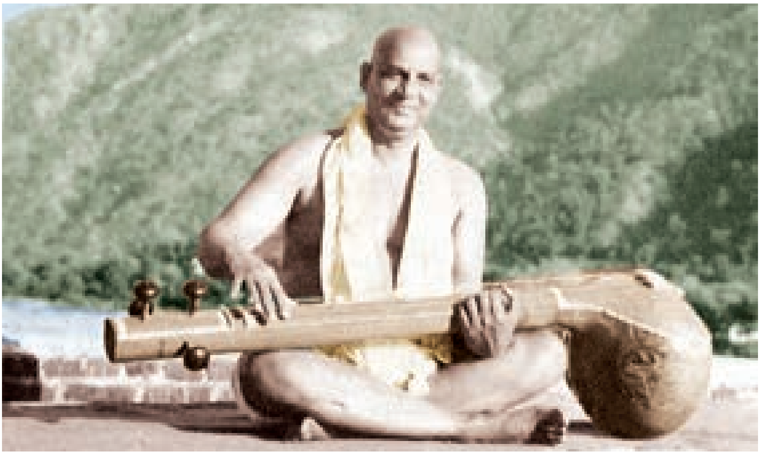

योग – विश्व की संभावी संस्कृति

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आज का आदमी विषयों, उपाधियों और इस शरीर के साथ रहते-रहते अपना मूल लक्ष्य ही विस्मृत कर चुका है। इस प्रत्यक्ष और स्थूल संसार से उसका स्नायु संस्थान इतना अभ्यस्त हो गया है कि उसे अब अपना यही स्वरूप, नाम, पद आदि अच्छे लगने लगे हैं और वह अपने सूक्ष्म शरीर की चिन्ता भी नहीं करता। वस्तुत: आज इस बात की आवश्यकता है कि हम एकान्त के कुछ क्षणों में अपने खोये हुए रूप, नाम आदि का शोध करें। उसकी मूल प्रकृति को समझें। योग इसी दिशा में मनुष्य को मदद पहुँचाता है।

योग पर अनुसंधान

आज समाज में योग के सम्बन्ध में धारणायें विशेष रूप से परिवर्तित हुई हैं। जहाँ मैं 1956 में पहली बार आया था, तब केवल 15-20 छात्र थे, किन्तु आज योग के विषय में श्रद्धा-विश्वास की जगह सर्वत्र खोज और प्रयोगों ने ले ली है। मानव जीवन पर योग के विभिन्न प्रभावों को विज्ञान द्वारा सिद्ध किया जा चुका है। कहने में यह बात बड़ी बिचित्र लगती है कि योग की दृष्टि में हमारी परम्परा विशेष समृद्ध रही है, किन्तु आज इस विषय पर पश्चिमी देशों में जितनी अधिक खोजें हुई हैं, उनकी शतांश भी अपने देश में नहीं हुई। यांत्रिकता तथा तकनीकी ज्ञान में तो हम आज पश्चिमी देशों से पीछे हैं ही, योग के क्षेत्र में भी 100 वर्ष पीछे रह गये हैं। पश्चिमी वैज्ञानिक इस क्षेत्र में मानव मन की जिन गहराइयों को स्पर्श कर चुके हैं, अभी हम उनकी कल्पना तक नहीं कर सकते। पश्चिमी देशों में योग के जिन पक्षों पर खोजें हुयी हैं, अगर उनका नामोल्लेख ही किया जाए तो यह वर्षों तक चल सकता है।

इसमें सन्देह नहीं है कि हम इस क्षेत्र में योग्य हैं, किन्तु आज हमारे सांस्कृतिक विश्वास पूरी तरह खत्म हो चुके हैं। सांस्कृतिक विश्वास ही राष्ट्र की धरोहर और पूर्वजों की विरासत होती है। अगर हम उसे ठीक तरह से नहीं समझ पाते तो फिर हमारा नैतिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है। आज विश्व के कोने-कोने में बैठे हजारों वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के मन का एक ऐसा ऊर्जा चक्र होता है, जो स्वयं उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता

है और दूसरों के व्यक्तित्व पर भी प्रभाव डालता है। आज विज्ञान जहाँ निरुत्तर हो गया है, वहाँ योग उन प्रश्नों का प्रमाणिकतापूर्वक उत्तर दे रहा है। यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य के मन में उठने वाले विचार, करुणा, दया, प्रेम, शान्ति, प्रसन्नता आदि सभी भाव विद्युत शक्ति के रूप में रहते हैं और व्यक्तित्व से उसी प्रकार विकीर्णित होते हैं, जैसे ट्यूब लाइट से प्रकाश। हम जहाँ भी जाते हैं, अपने साथ अपने भावों व विचारों का रेडियेशन लेकर जाते हैं। प्रसन्नता का प्रकाश और मनहूसियत की काली छाया हमारा पीछा नहीं छोड़ती।

हमारी प्राणशक्ति बहुत कार्य करती है। यह केवल साँस की शक्ति नहीं है, बल्कि सूक्ष्म शक्ति है। यह शरीर की अणु शक्ति है। इसे हम पैदा भी कर सकते हैं और नष्ट भी कर सकते हैं। इसका सदुपयोग भी कर सकते हैं और दुरुपयोग भी। यह एक ब्रह्माण्डीय शक्ति है, जो सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है। यह जीवनी शक्ति है, केवल भौतिक तत्त्व नहीं। जिस तरह जल प्रवाह के द्वारा विद्युत का निर्माण किया जाता है, जिस तरह पदार्थ का विखण्डन करने से ऊर्जा प्राप्त होती है, उसी तरह प्राणायाम के द्वारा प्राण की शक्ति का भी विखण्डन और संचयन किया जाता है। अब पश्चिमी वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि योग के द्वारा स्थूल से सूक्ष्म तक की पूर्ण यात्रा सम्पन्न की जा सकती है। आज संसार के लाखों-करोड़ों लोगों ने योग के दिये गए आश्वासनों को सहर्ष स्वीकार कर लिया है। योग को विज्ञान के प्रयोगों द्वारा परख लिया है। इसमें अन्धविश्वास का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि आज हमें जीवन जीने की इच्छा है अथवा हम जीवन प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें अपने अन्दर के तत्त्वों को समझना होगा, अपने वास्तविक रूप को जानना होगा। मृत्यु और दुःख जीवन को ठीक तरह से न समझने के कारण ही उत्पन्न होते हैं।

शरीर के सूक्ष्म आयाम

यौगिक शास्त्र यह स्वीकार करते हैं कि इस स्थूल शरीर के अन्दर एक सूक्ष्म वस्तु है, वह है प्राण। उसके अन्दर एक सूक्ष्म वस्तु है, वह है मन। उसके भीतर भी एक सूक्ष्म वस्तु है, जिसे विज्ञान कहते हैं। विज्ञान के अन्दर भी एक वस्तु है, जिसे अहं या अस्मिता कहते हैं और उसके अन्दर भी एक सूक्ष्म वस्तु है, जिसे आत्मा कहा जाता है। इसी का दूसरा नाम है आनन्द या ईश्वर। जैसे दूध के अन्दर दही, दही के अन्दर मक्खन और मक्खन के अन्दर घी आदि समाहित रहते हैं, ठीक उसी प्रकार हमारे शरीर के अन्दर भी कई स्तर होते

हैं। इसे डिब्बा के अन्दर डिब्बा समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। ये तो सूक्ष्म तत्त्व हैं, जो क्रमश: अति सूक्ष्म होते चले जाते हैं।

यह शरीर, जिसे मिट्टी का कहा जाता है, बड़ा ही विचित्र होता है। इसकी रचना कमाल की है। 'इस बंगले का एक अचंभा, नारी-पुरुष का जोड़ा, कहे कबीर सुनो भई साधो, जिन जोड़ा तिन तोड़ा'– कबीर की इन पंक्तियों में बड़ा ही रहस्य छिपा हुआ है। जो जोड़ता है, वह तोड़ता है। यह तोड़ना प्राणशक्ति का विघटन है। ठीक वैसे ही जैसे पदार्थ का विखण्डन किया जाता है। प्राणशक्ति के विखण्डन से जो ऊर्जा प्राप्त होती है, वही मन और प्राणशक्तियों को जोड़ने का कार्य करती है। हमारे ऋषि-मुनियों ने इस शरीर में 72 हजार नाड़ी समूहों की स्थिति मानी है। इनमें से 10 प्रमुख हैं। इनमें भी तीन विशेष प्रसिद्ध हैं – इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। नाड़ी शब्द नद् धातु से बना है। इसे गलत नहीं समझना चाहिए। इसका अर्थ है वह पथ जो शक्ति, जीवन, मन, विचार, भावों आदि को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाता है। जैसे विद्युत को ले जाने के लिए तार होते हैं, वैसे ही शरीर में नाड़ियाँ होती हैं, किन्तु इनका आकार-प्रकार अति सूक्ष्म और संवेदनशील होता है।

इड़ा नाड़ी मन रूपी शक्ति को तरंगित करती है। यह मस्तिष्क से सम्बन्धित है और सारे शरीर में इसका परिक्षेत्र फैला हुआ है। पिंगला नाड़ी प्राणशक्ति

या जीवन तत्त्व को सारे शरीर में संचालित करती है और मस्तिष्क में इसका मूल केन्द्र होता है। ये दोनों ही संस्थान अत्यन्त व्यवस्थित और रहस्यमय हैं। उदाहरणार्थ, मैं बोल रहा हूँ और आप सुन रहे हैं। मैं जो कह रहा हूँ, आप उसे उसी रूप में समझ रहे हैं। इस क्रिया में प्राण और मन, हमारी ये दोनों शक्तियाँ साथ-साथ क्रियाशील हैं। इनकी सूक्ष्म क्रिया प्रणाली में कहीं कोई व्यवधान नहीं है। इस शरीर में तीन ग्रंथियाँ भी होती हैं, जो शरीर के सारे परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी होती हैं। इनसे भाव और विचार भी परिवर्तित होते हैं। इनके नाम हैं ब्रह्म, विष्णु और रुद्र ग्रंथियाँ। सप्त-शोधन विद्या द्वारा इस शरीर और ग्रंथियों को तपाया जाता है, जिसके कारण यह शरीर कच्चे घट की तरह पक कर सुदृढ़ हो जाता है। उस पर मन का नियंत्रण हो जाता है। यह कार्य हठयोग करता है। हठ शब्द में दो बीज मंत्र हैं – हं और ठं। हं का अर्थ होता है प्राण और ठं का अर्थ होता है मन। इन्हीं दोनों का योग हठयोग का विषय है। ये नाड़ियाँ इड़ा और पिंगला के नाम से भी जानी जाती हैं और इन्हें गंगा और यमुना भी कहा जाता है। ये दोनों नाड़ियाँ मन और प्राणशक्ति की संवाहक हैं। विद्युत तभी उत्पन्न होती है, जब दोनों में योग होता है। यही कारण है कि योग में सबसे पहले साधक को हठयोग की क्रियायें करायी जाती हैं। जब शरीर ठीक और नियंत्रित रहता है तभी ध्यान हो सकता है।

कुछ लोग शरीर, मन और आत्मा को अलग-अलग समझते हैं, यह भ्रान्ति है। ये तीनों उसी प्रकार भिन्न हैं, जिस प्रकार बचपन, युवावस्था और वृद्धावस्था पृथक् होती हैं। जिस प्रकार जीवन की ये तीनों अवस्थायें पृथक् नहीं हैं, उसी प्रकार शरीर, मन व आत्मा भी परस्पर संश्लिष्ट हैं। जिस प्रकार बचपन न हो तो युवावस्था और वृद्धावस्था का प्रश्न नहीं उठता, उसी प्रकार शरीर के अभाव में मन और आत्मा की कल्पना भी संभव नहीं है।

यांत्रिक बनाम यौगिक सभ्यता

पश्चिमी सभ्यता यांत्रिक सभ्यता है। सम्पत्ति की वहाँ प्रचुरता है, वैभव और विलास की अधिकता है। मैंने संसार के लगभग सभी देशों को निकट से देखा है। लाखों की संख्या में मुस्लिम, ईसाई, दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका में शिष्य हैं। मैं जो कुछ बोलता हूँ, प्रमाण के साथ बोलता हूँ। आज पश्चिमी देशों में एक वर्ग ऐसा भी पैदा हो रहा है, जो आधुनिक सभ्यता से वैसा ही डरता है, जैसे हम मृत्यु या कैंसर से। वहाँ तकनीकी ज्ञान का तो अपरिमित

विकास हो रहा है, किन्तु उसी अनुपात में व्यक्तित्व के दूसरे पक्षों का विकास नहीं हो रहा है। हमारा व्यक्तित्व न तो शरीर है और न बुद्धि। वह दोनों का सम्मिश्रित रूप है। अत: दोनों का विकास होना आवश्यक है। इसी कारण पश्चिम के अनेक विद्वान् आधुनिक सभ्यता के विकास को संदेह की दृष्टि से देख रहे हैं। सिगमंड फ्रायड ने भी चेतावनी दी थी कि हर सभ्यता की अपनी कुछ खराबियाँ होती हैं। इस यांत्रिक सभ्यता की भी अपनी सीमायें हैं। इसने असंतोष, कुण्ठा, रक्तचाप, अनिद्रा आदि रोगों को जन्म दिया है।

किसी भी सभ्यता के लिए यदि पदार्थ की आवश्यकता होती है, तो उसे भोगने वाले व्यक्ति की भी जरूरत होती है। यह सीधा-सीधा माँग और पूर्ति का सिद्धान्त है। पश्चिमी सभ्यता ने भोग-विलास-वैभव की साम्रगी तो दी, पर उसी के अभिशापों ने मनुष्य के शरीर को रुग्ण बना दिया। सामने आ रही नई पीढ़ी का कथन है कि जब मन में शान्ति नहीं, शरीर स्वस्थ नहीं, तो आधुनिक सभ्यता के इन उपहारों का क्या होगा? हम उस संपत्ति को लेकर क्या करेंगे जिससे हम स्वयं पागल हो जायें या हमारा पुत्र पागल हो जाए अथवा पत्नी तलाक देकर दूसरी जगह चली जाये?

हमारी अतीत की संस्कृति इस दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध थी। हो सकता है यह बात आप न जानते हों, पर हम जानते हैं, हम देश-देश छानते हैं। इसलिए भी जानते हैं कि हमारे देश ने एक अत्यन्त उच्च और विकसित सभ्यता देखी थी और उसके संतुलित भोग के लिए योग के सिद्धान्तों का निर्धारण किया था। पश्चिमी संसार आज योग की दिशा में बढ़ रहा है। इसलिए कि वह अपनी विकसित सभ्यता के साथ समन्वय स्थापित कर सके। जबकि हमारे यहाँ इस प्रकार के प्रयत्न हजारों वर्ष पहले हो चुके हैं, व्यवस्थायें बनायी जा चुकी हैं।

पश्चिमी देशों में आज योग को विज्ञान का विषय बना लिया गया है। उस पर हजारों प्रयोग हो रहे हैं। इन प्रयोगों से मैं किसी-न-किसी रूप में सम्बद्ध हूँ। संसार की अनेकों योग समितियों का मैं सदस्य हूँ। कहीं किसी एक रूप में सम्बन्धित हूँ, तो कहीं किसी दूसरे रूप में। कुछ समय पहले जर्मनी से हमारे पास योग के एक पक्ष पर किये गये प्रयोग का विवरण आया है, जिसमें कई सौ आदमियों को केवल दस मिनट बैठाकर उन्हें चुपचाप श्वास पर ध्यान करने को कहा गया और इस बीच उनके रक्तचाप और साँस आदि का पक्का हिसाब रखा गया। उन्हें इस प्रयोग के आश्चर्यचकित करने वाले परिणाम मिले हैं। इस अल्प अवधि में ही उनका रक्तचाप सामान्य हो जाता है तथा ऑक्सीजन की

खपत भी कम हो जाती है। मानसिक शान्ति स्थापित हो जाती है तथा और भी चौंकाने वाले निष्कर्ष निकलते हैं। इसी तरह सिद्धासन के द्वारा भी रक्तचाप कम हो जाता है तथा इसके द्वारा आत्म नियोजन और परिवार नियोजन का कार्य भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इस आसन का सीधा सम्बन्ध काम ग्रंथि और शुक्र ग्रंथि से है। इस तरह के हजारों प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि योग हमारी वैज्ञानिक पूँजी है। योग का हमें अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए।

चेतना का उत्थान

वैज्ञानिक प्रयोगों से यह भी सिद्ध हो चुका है कि 24 घण्टे हमारी चेतना शक्ति एक समान नहीं रहती। कभी कम रहती है और कभी ज्यादा। नींद में यह सामान्य स्तर से भी बहुत नीचे चली जाती है और प्रात:काल ब्रह्म-मुहूर्त में यह अत्यन्त संवेदनशील होती है। यही कारण है कि प्रात:काल का समय पढ़ने-लिखने या योग अभ्यास के लिए सबसे अधिक उपयुक्त माना जाता

है। योगनिद्रा के द्वारा चेतना की यह अत्यन्त सक्रिय अवस्था जब चाहे तब निर्मित की जा सकती है और इस स्थिति में जीवन में जो भी संस्कार डाले जाते हैं, वे स्थायी महत्त्व के हो जाते हैं। उन्हें ब्रह्मा की लकीर भी मिटा नहीं सकती। इस सर्वाधिक ग्रहणशील अवस्था में आत्म निर्देशन के द्वारा पूरी जिन्दगी को बदला जा सकता है।

इस दुनिया में सबसे अधिक कठिन कार्य होता है अपने को बदलना। आज विचित्रता यह है कि हर व्यक्ति अपने को बदलना चाहता है, क्योंकि कोई भी अपने से प्रसन्न नहीं है। योगनिद्रा ही एक ऐसी स्थिति है, जहाँ केवल विचार ही नहीं, चेतना को भी बदला जा सकता है। बौद्धिक विचार तो मन की एक सामान्य स्थिति है। इसके बदलने से कुछ नहीं होता। इस परिवर्तन का मूल क्रम चेतना से प्रारम्भ होता है। योगनिद्रा में चेतना को ही रेगुलेट किया जाता है। यह एक युक्ति है। यह सत्य है कि जो कुछ लिया जा सकता है, उसे छोड़ा भी जा सकता है, पर यह कार्य चेतना के द्वारा ही होगा। अत: इस चेतना को पकड़ में लाना चाहिए। यह चेतना न तो विचार है, न तो स्मृति, यह अपने अस्तित्व की, 'मैं हूँ' की चेतना है। यह अतिशय सूक्ष्म है, हवा सदृश है और हवा को पकड़ना निश्चित रूप से कठिन होता है न?

इसे पकड़ने के लिए योग में और भी कई तरीके हैं, जैसे जप और ध्यान। यह जरूरी नहीं कि यह कार्य दो या चार या दस दिन में ही सम्पन्न हो जाए, कई बरस भी लग सकते हैं, पर पकड़ मिलेगी जरूर। जिस दिन मिलेगी, उसी दिन इस जीवन का सारा नियंत्रण तत्त्व भी मिल जाएगा। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं – कवि, कलाकार, संगीतज्ञ, अनुसंधान कर्त्ता, न्यूटन और आइन्सटाइन जैसे वैज्ञानिक – सभी ने चेतना की इस पकड़ को प्राप्त किया है। चेतना के माध्यम से ही कोई व्यक्ति महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली बनता है। योग, चेतना को नियंत्रित करने का सरल तरीका है।

कुछ लोगों को भ्रान्ति हो सकती है कि योग भी कोई धर्म है। किन्तु यह कोई धर्म नहीं, धर्म की नींव है और उससे बहुत ऊँचा है। इसे संसार के सभी धर्म के लोग अपना रहे हैं। योग को अपनाने से किसी का धर्म बिगड़ता नहीं है। जो अमृत विष बन जाए वह अमृत नहीं हो सकता। योग मनुष्य की हर प्रकार की संकीर्णता को नष्ट करने वाला वैज्ञानिक साधन है। उससे व्यक्ति के जीवन और धर्म, दोनों ही समृद्ध बनते हैं। योग आने वाले कल की संस्कृति का नाम है। यह वैज्ञानिक संस्कृति है। इसका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

योग और योगविद्या

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

सन् 2013 में विश्व योग सम्मेलन के दौरान यह घोषित किया गया था कि योग को द्वारे-द्वारे तीरे-तीरे प्रचारित करने का हमारा कार्य पूरा हो गया है। योग को प्रचारित करने में हमें पचास वर्ष लगे। हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानंद जी ने दुनिया के कोने-कोने का दौरा किया और लोगों को योग के मार्ग पर चलने एवं योग को जीवनशैली के रूप में अपनाने के लिए प्रेरित किया। जब सन् 1963 में यह कार्य शुरू हुआ तो लोगों को यह नहीं पता था कि योग क्या है। पचास वर्ष बाद प्राय: हर व्यक्ति को योग शब्द की कुछ-न-कुछ समझ है।

अब जबकि प्रचार-प्रसार का कार्य समाप्त हो चुका है, गंभीर योग साधकों के लिए योग का दूसरा अध्याय शुरू हो रहा है। यह उन लाखों-करोड़ों लोगों के लिए नहीं है जिनका योग से परिचय मात्र है, बल्कि उन गिने-चुने लोगों के लिए है जो योग के बारे में अपनी सजगता, अनुभव और समझ को गहरा करना चाहते हैं। इसके लिए हमें उस मूल उद्देश्य की ओर लौटना होगा जिसके साथ श्री स्वामीजी ने बिहार योग विद्यालय में योग प्रशिक्षण शुरू किया था। मूल उद्देश्य योगविद्या को संरक्षित और प्रचारित करना था, योग को नहीं। योग तो विधियों का एक समूह है जिसका लोग अभ्यास करते हैं, जबकि योगविद्या एक ऐसी समझ है जो जीवन की गुणवत्ता को सुधारती है। दोनों के बीच अंतर है।

उद्देश्य और अभ्यास के बीच अंतर

आप लोगों से अगर पूछा जाए कि योग का उद्देश्य क्या है तो शायद इस तरह के उत्तर मिलें – 'जीवन में संतुलन लाना', 'प्रसन्नता पाना' और 'जीवन में सकारात्मकता बनाए रखना'। ये उन लोगों के कथन होंगे जो कुछ समय से योग से जुड़े हुए हैं। अगर आप आम आदमियों से पूछें तो वे कहेंगे कि योग आत्म-साक्षात्कार या समाधि-प्राप्ति के लिए है। वे योग की एक ऊँची और आदर्शवादी छवि बनायेंगे।

जब आप उन्हीं लोगों से पूछते हैं कि आप कौन-सा योग करते हैं, तो वे कहेंगे, 'ओह, मैं सप्ताह में तीन बार अपनी पॉवर योग कक्षा में जाता हूँ' या 'मैं सप्ताह में दो बार सत्यानंद योग के लिए जाता हूँ' या 'मैं सप्ताह में तीन

बार अपने अयंगार योग सत्र में जाता हूँ।' आप फिर से पूछते हैं, 'ठीक है, आप सप्ताह में कई बार वहाँ जाते हैं, लेकिन आप वहाँ क्या करते हैं?' वे कहेंगे, 'ओह, कुछ शारीरिक व्यायाम, कुछ आसन, और अगर हमारे पास समय हो तो हम थोड़ा-सा प्राणायाम भी कर लेते हैं। फिर हम चाय पीते हैं, थोड़ी गपशप कर लेते हैं और घर लौट आते हैं।' सत्यानंद योग कक्षा में जाने वाले लोग कहेंगे, 'ओह, हम आसन, प्राणायाम, योग निद्रा, ध्यान, सत्संग, कीर्तन और मंत्र से युक्त योग कक्षाएँ करते हैं।' हर कोई अपने अभ्यास के बारे में अलग-अलग मत देगा। सवाल यह है कि क्या आपने योग का जो उद्देश्य परिभाषित किया, उसे अपने इस अभ्यास से प्राप्त कर सकते हैं? क्या आप पवनमुक्तासन और नाड़ी शोधन प्राणायाम का अभ्यास करके प्रसन्नता का अनुभव कर सकते हैं?

आपके आदर्श और आपके अभ्यास में कोई मेल नहीं है। अगर आप कहते हैं, 'योग के अभ्यास से मैं आध्यात्मिक हो गया हूँ' तो आपके लिए आध्यात्मिकता क्या है? अच्छा बनना, सिद्धियाँ प्राप्त करना या ईश्वर से डरना? आपके लिए आध्यात्मिक बनना क्या है, जरा इस बारे में सोचिये। वहाँ भी आपकी कथनी और करनी में अंतर है।

अपने योग के अभ्यासों के बारे में आपकी कोई गहरी समझ नहीं है, भले ही आप बीस-तीस आसन कर लेते हों, शंखप्रक्षालन से पेट साफ कर लेते हों, योग निद्रा में अच्छी नींद लेते हों, ध्यान में कल्पना की अच्छी उड़ान भर लेते हों और सोचते हों, 'मैं कितना आध्यात्मिक हूँ, कितना शांत, सामंजस्यपूर्ण और संतुलित हो गया हूँ! मैं दिव्य प्रकाश और दृश्यों को देख सकता हूँ, गहन

शांति का अनुभव कर सकता हूँ!' क्या यह सब आपको योग के उस अंतिम लक्ष्य तक ले जाएगा जो आपने अपने लिए बनाया है? नहीं।

योगविद्या का क्षेत्र

शुरुआती दिनों में जब आश्रम में श्री स्वामीजी हमलोगों को योग सिखाते थे, तो उनका प्रशिक्षण पारंपरिक और शास्त्रीय तरीके से होता था। लेकिन जब उन्होंने योग यात्राएँ, संगोष्ठियाँ और कार्यक्रम आयोजित करने शुरू किये, तो उन्होंने आम जनता के लिए, जो शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक रूप से योग में कदम रखने के लिए तैयार नहीं थी, आसन और प्राणायाम के एक सीमित समूह का चयन किया। ये सीमित अभ्यास अंततः उन लोगों को सिखाये गये जो शिक्षक बनने के लिए प्रशिक्षित किये गये थे।

अधिकांश लोग पारंपरिक योग शास्त्रों में बताए गए आसनों, जैसे मयूरासन या वृश्चिकासन का अभ्यास नहीं कर सकते। आप में से अधिकांश लोग हठयोग या राजयोग के साहित्यों में बताए गए आसनों का अभ्यास नहीं करते। आप योग के नाम पर ऐसे आसन करते हैं जो आपको अपने शारीरिक स्वास्थ्य, ऊर्जा, लचीलेपन आदि के लिए अच्छे लगते हैं। आप योग का अभ्यास नहीं कर रहे हैं। लोग किसी किताब में हठयोग के बारे में कुछ पंक्तियाँ पढ़ लेते हैं और सोचते हैं कि वे हठयोग के बारे में सब कुछ जान गये, जबकि वे हठयोग के साहित्यों में वर्णित षट्कर्मों या आसनों का अभ्यास भी ठीक से नहीं कर सकते। आज हर कोई इसी स्थिति में है। योग के बारे में थोड़ी बहुत जागरूकता और इसका छिटपुट अभ्यास तो है, लेकिन योग की समझ नहीं है और न ही इसे जीवनशैली में शामिल किया गया है।

दूसरे अध्याय में हम मूल उद्देश्य पर वापस आ गए हैं। सन् 2014 से हम योग सीखने, सिखाने और जीने की नई विधियों एवं शैलियों पर काम कर रहे हैं। यही योगविद्या है। योग के ज्ञान को समझना, आत्मसात् करना और जीना है।

योग चक्र का पुनरन्वेषण

जब हमने श्री स्वामीजी की मूल योग शिक्षा को देखना शुरू किया तो हमें 'योग चक्र' का पता चला। योग चक्र उन छह योगों का प्रतिनिधित्व करता है जिन्हें श्री स्वामीजी ने शुरुआती दिनों में प्रचारित किया था और जिनसे पहली पीढ़ी परिचित हुई – मैं, स्वामी कैवल्यानंद और अन्य लोग जो तब से

इस मार्ग पर चल रहे हैं। योग चक्र में तीन ऐसे योग परिभाषित किये गये जिन्हें अभ्यास द्वारा सिद्ध करना है, और तीन ऐसे योग जो आंतरिक रचनात्मकता और उपलब्धि को व्यक्त करने के लिए हैं।

इस क्रम में पहले तीन योग हैं – हठयोग, राजयोग और क्रियायोग। इन्हीं तीन योग शाखाओं को श्री स्वामीजी ने साधना के रूप में चुना है, ताकि भीतर की सकारात्मकता को बाहर अभिव्यक्त किया जा सके; शरीर और मन में सामंजस्य स्थापित किया जा सके; प्राण शक्ति, चक्रों और कुंडलिनी शक्ति को जागृत किया जा सके तथा मानसिक एवं आध्यात्मिक आयामों का अन्वेषण किया जा सके। पहली कक्षा हठयोग की है, लेकिन इसमें आपके द्वारा किए जाने वाले कुछ एक आसन ही शामिल नहीं हैं, बल्कि इसमें हठयोग का पूरा क्रम आता है। अगली कक्षा राजयोग की है और इसमें भी योग निद्रा और अंतर्मौन जैसे चुनिंदा अभ्यासों के बजाय राजयोग का पूरा कोर्स करना होता है। अंत में आप क्रियायोग में प्रवेश करते हैं।

योग की व्यवहारात्मक शाखाओं में कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग शामिल हैं। इनके माध्यम से अपनी साधनात्मक उपलब्धियों को अभिव्यक्त किया जाता है, उन्हें जिया जाता है।

ये छह योग मिलकर योग चक्र बनाते हैं। श्री स्वामीजी ने साठ के दशक में हमें सिखाते समय इस योग चक्र की रचना की थी। हमलोग उनके पास सिर्फ उनके साथ रहने आए थे, योग सीखने या योग शिक्षक बनने के लिए नहीं। यह हमारा उद्देश्य नहीं था। हम सिर्फ योग का अन्वेषण करने की कोशिश कर रहे थे। इसलिए, कई सालों तक हम योग की हर एक पद्धति और अभ्यास से गुज़रे। लेकिन फिर जब योग सम्मेलनों, संगोष्ठियों और कार्यक्रमों का दौर शुरू हुआ तो हमने जो योग सीखा था उसे 10 प्रतिशत पैकेज में समेट दिया गया और वैश्विक स्तर पर सिखाया गया। यह पैकेज आज वैश्विक स्तर पर 'सत्यानंद योग' के नाम से जाना जाता है। योगविद्या एक पूर्णतया अलग विषय है जो श्री स्वामीजी की मूल शिक्षा थी।

योग की इन छह शाखाओं के बीच पारस्परिक संबंध है। अभ्यासात्मक आयाम में हठयोग, राजयोग और क्रियायोग शामिल हैं। व्यावहारिक आयाम में कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग सम्मिलित हैं। हठयोग और कर्मयोग के बीच अंतरंग और गहरा संबंध है, जिसे हमने सन् 2016 के योग चक्र कार्यक्रम में देखा था। इसी तरह, राजयोग और भक्तियोग के बीच गहन संबंध है, और

यही इस योग चक्र कार्यक्रम का विषय रहेगा। हमलोग देखेंगे कि दोनों एक-दूसरे का समर्थन कैसे करते हैं और संबंधित विधियाँ एवं अभ्यास क्या हैं। तीसरा संबंध क्रियायोग और ज्ञानयोग का है।

शिक्षाओं को अमल में लाना

आप दुर्योधन की कहानी जानते हैं। श्रीकृष्ण उसके पास शांति का प्रस्ताव लेकर गए थे, जिसमें पाण्डवों को केवल पाँच गाँव देने की बात थी। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से कहा, 'मैं आपका शांति प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकता।' श्रीकृष्ण ने पूछा, 'क्यों? वे राज्य नहीं, केवल पाँच गाँव माँग रहे हैं जहाँ वे शांति से रह सकें।' दुर्योधन ने कहा, '*जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानामि अधर्मं न च मे निवृत्तिः* – मैं जानता हूँ कि क्या सही है और क्या गलत, क्या धर्म है और क्या अधर्म। मैं समझ सकता हूँ कि मैं जो कर रहा हूँ वह गलत है, लेकिन मेरा झुकाव धर्म की ओर नहीं है और मैं खुद को अधर्म से अलग नहीं कर सकता।'

जब लोग बहुत ज्यादा जान जाते हैं तो वे दुर्योधन बन जाते हैं। जब आप बहुत ज्यादा जानते हैं, लेकिन उसे जी नहीं पाते, तो आपका दिमाग दुर्योधन जैसा हो जाता है – 'मुझे पता है कि क्या सही है, लेकिन मैं उसे कर नहीं सकता।' यहाँ आपकी बुद्धि और विवेक विफल हो गये हैं। आप जानते हैं कि क्या सही है, लेकिन आप उसका पालन नहीं कर सकते। आप एक अच्छे गणितज्ञ हो सकते हैं, आप बहुत तेजी से कठिन गणना करने में सक्षम हो सकते हैं, फिर भी वह बुद्धि जीवन में लागू नहीं होती। बुद्धि के बजाय जीवन में केवल अहंकार का उपयोग किया जाता है। अहंकार वह भावना है जो आपको यह कहने के लिए प्रेरित करती है, 'मुझे यह पसंद नहीं है', 'मुझे यह पसंद है', 'मुझे यह चाहिए', 'मुझे यह नहीं चाहिए।'

अब यह जानने का प्रयास कीजिये कि सीखी हुई बातों को कैसे लागू किया जाए। इसके लिए समझ होनी चाहिए और संबंध स्पष्ट होना चाहिए। तभी अभ्यास उपयोगी और प्रभावी होंगे। आप सभी पिछले पचास वर्षों में कही गई बातों के परिणाम हैं। अब, अगले बीस वर्षों में मैं ऐसे लोगों को देखना चाहूँगा जो नई समझ के साथ उभरेंगे। वे ऐसे लोग होंगे जो योग के साथ प्रयोग और शोध करेंगे, जो अपनी खोज के अनुसार जियेंगे और बनेंगे, और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करेंगे।

– 11 दिसंबर 2017, योग चक्र कार्यक्रम, गंगा दर्शन

ज्ञानयोग का प्रयोजन

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

यह आश्चर्य की बात नहीं कि आज योग ने एक परिपूर्ण विद्या का श्रेय हासिल किया है और समाज के प्रत्येक वर्ग में योग को मान्यता मिली है, चाहे वह फैशन, उद्योग, खेल जगत्, चिकित्सा क्षेत्र, शिक्षा, सेना, पुलिस या आम आदमी का जीवन हो। इतना ही नहीं, सियाचीन की बर्फीली चट्टानों से थार के रेगिस्तान की कठिन परिस्थितियों को झेलने में योग एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। बच्चे-बूढ़े-नौजवान, स्त्री-पुरुष, अमीर-कंगाल, सभी ने आज योग को तहेदिल से स्वीकार किया है। दुनियाभर में योग की माँग है और अब कोई संदेह नहीं कि योग समाज का अभिन्न अंग बन चुका है।

आखिर योग की इस लोकप्रियता का रहस्य क्या है? योग को इतनी व्यापक मान्यता क्यों मिली? सच पूछें तो इसका जवाब बहुत सरल है, जो एक ही वाक्य में बतलाया जा सकता है – योग में मानव समाज की हर समस्या को हल करने की क्षमता है। मानव व्यक्तित्व के अलग-अलग स्तर हैं, जिस कारण उसकी आवश्यकतायें भी नानाविध हैं। वह हमेशा सक्रिय रहता है, जिस कारण उसे कुछ-न-कुछ करने की इच्छा सताती रहती है। अगर उसे कुछ करने को न मिले तो वह उदास हो जाता है। इसके अलावा मनुष्य बुद्धिजीवी है जिस कारण वह हमेशा अपने चारों ओर एक तर्क की दुनिया बुनते रहता है। कोई बात उसे तर्कहीन लगे तो वह उसे कभी नहीं स्वीकारता, भले ही वे तथ्य कितने ही सच क्यों न हों। अपनी दुनिया को वह इस तर्क के आइने के जरिए ही देखता है और अपना जीवन उसी आकार में ढालने का प्रयास करता है।

इसके ठीक विपरीत वह अत्यन्त भावुक भी है। हर समय उसके व्यवहार पर भावनाओं का गहरा असर रहता है और ये भावनाएँ इतनी तीव्र हैं कि यदि उन्हें सही दिशा नहीं दी जाए या उनका सही उपयोग न किया जाए तो वे घातक सिद्ध हो सकती हैं। भावनाओं के अतिरेक से नर्वस ब्रेकडाउन, आत्महत्या, दिल का दौरा और अनेक घातक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा मनुष्य का एक पारलौकिक व्यक्तित्व भी है जिसका परिचय उसको स्वप्न, कल्पनाओं और सूक्ष्म विचारों के रूप में होता है। और फिर मूल रूप में उसका स्वभाव आध्यात्मिक है जिसकी झलक उसकी श्रद्धा

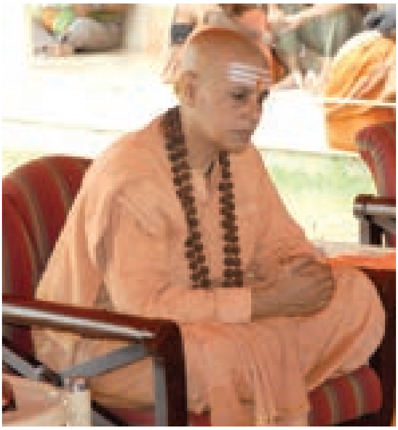

और विश्वास में साफ दिखाई देती है। एक नास्तिक भी भले ही भगवान पर विश्वास न करे, अपने आप पर और अपने अस्तित्व पर विश्वास तो करता ही है।

योग की सफलता का मुख्य कारण यह है कि वह इन सब आवश्यकताओं पर गहरा ध्यान देता है। योग की शुरुआत भले ही शरीर से हो, किन्तु उसका दीर्घकालिक अभ्यास व्यक्ति को चेतना के उच्चतम स्तर तक पहुँचा सकता है। कर्मयोग व्यक्ति की कार्यक्षमता को उन्नत बनाता है, वैसे ही भक्तियोग उसकी भावनात्मक आवश्यकताओं को पूरा करता है। राजयोग उसकी पारलौकिक संभावनाओं का पोषण करता है और ज्ञानयोग उसकी बौद्धिक पिपासा को तृप्त करता है। योग का यह समन्वय हमारी आध्यात्मिक खोज के लिए पर्याप्त है, क्योंकि इन विभिन्न योगों के द्वारा हमें जीवन सम्बन्धित हर एक क्लिष्ट प्रश्न का उत्तर आसानी से मिल सकता है।

शरीर और मन के परे

अनादि काल से हमारे पूर्वजों को स्पष्ट मालूम था कि अगर मनुष्य को स्वयं को सुधारना है तो यह केवल चेतना के विस्तार से सम्भव है। स्थूल चेतना का दिव्य अनुभूतियों की ओर विस्तार होने पर ही मनुष्य पशु योनि से विरासत में मिली आहार, निद्रा, भय, मैथुन जैसी स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण पा सकता है। परन्तु आज की आधुनिक दुनिया में चेतना के विकास पर कोई ध्यान नहीं देता। बुद्धि के विकास का ही प्रयत्न होता है, क्योंकि आज की दुनिया में स्वाभाविक प्रवृत्ति के साथ-साथ बुद्धि की भी जरूरत पड़ती है। इसलिए जीवन में सफलता के लिए हम केवल बुद्धि पर ध्यान देते हैं।

हमें यह समझ लेना आवश्यक है कि केवल बुद्धि के विस्तार से हमारी समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं है। आखिरकार क्या तुम केवल शरीर, मन, भावना और बुद्धि हो या तुम्हारा अस्तित्व उससे परे भी कुछ है? शरीर और शारीरिक स्तर की चीजों से हम इतने आसक्त हैं कि हमारा योगाभ्यास

भी केवल शरीर और मन तक ही सीमित रह गया है। लेकिन योग की पहुँच इससे भी परे है और दुनिया में आध्यात्मिक मानसिकता के अनेक लोग हैं जिनमें शरीर और मन के परे क्या है, यह जानने की रुचि है। क्या यह शरीर ही अंतिम सत्य है या इससे सूक्ष्म भी कुछ है – ऐसी जिज्ञासा उनमें प्रबल है।

अपने आप को पहचानो

शरीर और मन से परे हमारे अस्तित्व के अलावा एक और प्रश्न उठता है। क्या हमारे अतिरिक्त इस ब्रह्माण्ड में अन्य कोई अस्तित्व है जिसका स्वरूप दिव्य है? सीधे शब्दों में कहा जाय कि मन में देवी-देवताओं की सच्चाई का प्रश्न उठता है। भारतवर्ष में इन सवालों पर सदियों से विश्लेषण होते आया है और हमारे ऋषि-मुनियों ने इन सवालों पर सहस्राब्दियों तक खुले आम चर्चा की और अंत में वे एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे – अपने आप को जानो – *कोऽहं*।

उनके इस वक्तव्य का आधार है कि यदि तुम अपने आप को जान लोगे तो उसी क्षण ब्रह्माण्ड में सब चीजों का ज्ञान प्राप्त हो जाएगा। आज वैज्ञानिक वर्ग भी ऐसी ही बातें कर रहे हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य, ब्रह्माण्ड की प्रतिमूर्ति है, याने कि हर मनुष्य के भीतर एक छोटा ब्रह्माण्ड छिपा है। जो कुछ बाहर दिखाई देता है – सूर्य-चन्द्रमा, ग्रह-तारे, पर्वत-नदियाँ, ये सब भीतर में लघु रूप में विद्यमान हैं। फर्क इतना है कि वे इसे अद्वैत वेदान्त के बदले वैज्ञानिक परिभाषा में 'यूनिफाइड फील्ड थीयरी' कहते हैं।

यूनिफाइड फील्ड थीयरी की मान्यता है कि इस ब्रह्माण्ड में सृष्टि का हर पदार्थ किसी व्यापक अदृश्य माध्यम द्वारा एक-दूसरे से जुड़ा है। इस संसार और सृष्टि में सभी प्राणी एक अदृश्य शक्ति से आपस में जुड़े हैं। उस अदृश्य शक्ति का दूसरा नाम परमात्मा ही है।

हमारे ऋषि-मुनि हजारों वर्षों से यह कहते आये हैं कि अपने आप को जानने से हम सब कुछ जान सकते हैं, क्योंकि एक स्तर पर हम पदार्थ, दूसरे स्तर पर ऊर्जा और उससे सूक्ष्म स्तर पर चेतना हैं। और वह चेतना सर्वव्यापक है।

लगता है कि आज हमारे समाज में एक बीमारी आ गयी है। हमारी सोच और समझ, हमारे वैचारिक प्रश्न केवल बाहर तक ही सीमित रहते हैं। बातें तो हम अध्यात्म की करते हैं जरूर, पर अटके हैं पदार्थवाद और विषयों की वृत्ति में। अध्यात्म में हमारी रुचि केवल एक दिमागी खुराफात है। और इससे यदि हमें कोई जवाब मिल भी जाए तो हम उस पर और प्रश्न करने लगते

हैं, क्योंकि बुद्धि और मन का तो स्वभाव ही शक और प्रश्न तक सीमित है। सच तो यह है कि हमें मन और बुद्धि द्वारा आध्यात्मिक प्रश्न का उत्तर कभी नहीं मिल सकता और पदार्थवाद और इन्द्रियों के वश में रहकर हमें सच्चा आनन्द मिलना असम्भव है। हाँ, यदि तुम्हें पदार्थवादी जीवन जीने में रुचि हो तो पूरा हक है, लेकिन तुम्हारे चुने रास्ते से हटकर चलने वालों पर ऊँगली उठाने का तुम्हें कोई हक नहीं बनता। यदि कोई मन और पदार्थ के परे बसी चेतना का अनुभव करना चाहे और तदनुकूल जीवन पद्धति चुने तो उसे वैसे जीने का उतना ही हक है।

इन दो तरह के लोगों के लिए दो भिन्न प्रकार के योग मार्ग हैं – बहिरंग और अंतरंग। जो योग आज दुनिया भर में हजारों-लाखों की संख्या में युवाओं और वृद्धों को शरीर और मन की तंदुरुस्ती के लिए सिखलाया जा रहा है वह बहिरंग योग है। परन्तु आंतरिक चेतना के विस्तार के लिए एक और योग है, जिसको अंतरंग योग कहते हैं। बहिरंग योग लाभदायक अवश्य है, पर यदि तुम अपने में मूलभूत रूपांतरण चाहते हो तब तुम्हें अंतरंग योग को अपनाना पड़ेगा। हाँ सच है कि बहिरंग और अंतरंग योग एक-दूसरे से अलग नहीं, क्योंकि बहिरंग योग अन्त में व्यक्ति को उस बिन्दु तक ले जाता है जहाँ वह गहराई में छिपे सूक्ष्म तत्त्व का अनुभव करने लगता है और उसका झुकाव अंतरंग जीवन की तरफ जाता है।

अंतरंग जीवन का अर्थ है चेतना की गहराई तक पहुँचना। यदि तुम अपनी चेतना को संभाल सको तो जीवन के हर पहलू को संभाल सकोगे, क्योंकि चेतना ही तुम्हारी परिपूर्णता है। फिर तुम्हें न तो योगा थेरेपी और न ही फिटनेस योगा की आवश्यकता होगी, क्योंकि तुम्हारी सब समस्याएँ चेतना के विकास द्वारा सम्भल जाएँगी। आखिर चेतना वह मूल स्रोत है जहाँ से शरीर, मन, भावना और बुद्धि उत्पन्न हुए हैं। जब जड़ तक जाने में तुम सफल होगे, तब उसकी शाखाएँ अपने आप सुधर जाएँगी। चेतना की गहराइयों को खोज निकालना ही आंतरिक जीवन का तात्पर्य है, क्योंकि अगर तुम अपनी चेतना को व्यवस्थित कर सको, तो तुम्हारा समस्त व्यक्तित्व स्वयं ही व्यवस्थित हो जायेगा।

आत्मा की खोज

योग का मुख्य लक्ष्य चेतना का विस्तार एवं विकास है और ज्ञानयोग इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ज्ञान शब्द के मूल धातु का अर्थ है जानना।

क्या जानना? हमें शब्द, रस, स्पर्श, गन्ध और रूप की बाहरी दुनिया के बारे में सब मालूम हो सकता है जो हमें कान, मुख, त्वचा, नासिका और आँखों द्वारा ज्ञात होता है। इसे अपरा ज्ञान कहते हैं जो समय के अधीन है और जिसका अंत मृत्यु है। परन्तु यह ज्ञानयोग का विषय नहीं।

ज्ञानयोग का विषय है आत्मा। वह आत्मा जिसे हम चेतना या कुण्डलिनी शक्ति जैसे अनेक नामों से सम्बोधित कर सकते हैं। चाहे जिस नाम से हम पुकारें, उसका मतलब एक अनादि और अनंत तत्त्व से है। ज्ञानयोग का विषय केवल और केवल आत्मा के बारे में जानना, सोचना, सुनना और समझना है। यह आत्मा क्या है और इसका स्थान कहाँ है? क्या यह शरीर में बसती है या शरीर के बाहर? यह आत्मा शरीर में कहाँ से प्रवेश करती है और अन्त में कहाँ जाती है? क्या यह शरीर की तरह नश्वर है? ज्ञानयोग में यही प्रश्न पूछे जाते हैं, जो परा विद्या की श्रेणी में आते हैं।

जब ऋषियों ने कहा, 'अपने आप को पहचानो' तब उनका संकेत इसी अविनाशी तत्त्व की ओर था। उसी आत्मा को जानो जो अमर है, जिसे अग्नि जला नहीं सकती, और न ही तलवार काट सकती है। जब ऋषियों ने मनुष्य को आत्मविचार करने का सुझाव दिया तब उनका मतलब यही था कि आत्म-साक्षात्कार का प्रयत्न करो। अनादि काल से अनेकों ने इस मार्ग को अपनाकर आत्मा के स्वरूप को जानने की चेष्टा की है। ऐश और आराम के जीवन को पीछे छोड़कर, सब चीजें त्यागकर वे केवल आत्मा को जानने के लिए जीते थे।

आत्मा को जानना बहुत ही सरल है क्योंकि इस अनुभव के लिए कुछ भी करना आवश्यक नहीं है। न हिमालय की चोटियों पर जाने की आवश्यकता है, न सिर के बल खड़े रहने की जरूरत है, न श्वास को बंद करना जरूरी है

और न किसी प्रतीक पर मन को केन्द्रित करने की जरूरत है। तुम्हें कुछ भी करने की जरूरत नहीं, सिवाय आत्मा के अस्तित्व पर अटूट विश्वास रखने के। उसी आत्मा की सत्यता पर विश्वास करना जो सत्यं-शिवं-सुन्दरम् है। वही आत्मा जो तुमसे अलग नहीं है, जो ज्ञान है, जो प्रकाश है और तुम्हारे भीतर विद्यमान है। तुम्हें केवल इस पर दृढ़ विश्वास होना चाहिए, उतना ही दृढ़ विश्वास जिसके द्वारा तुम्हें यकीन है कि तुम स्त्री हो, पुरुष नहीं। क्या तुम्हें कभी यह शंका हुई कि तुम स्त्री हो? नहीं, इसके लिए तुम्हें कोई पुष्टि की आवश्यकता नहीं। आत्मा के प्रति ऐसा अटल विश्वास होना चाहिए, जिसे कुछ भी बहका या बदल नहीं सकता। तब एक क्षण में आत्मदर्शन हो सकता है। ज्ञानयोग में इस प्रकार के आत्मचिंतन की आवश्यकता है।

हाँ, सच है कि हम सब में इस किस्म का विश्वास नहीं है। पर कहीं तो हमें शुरुआत करनी चाहिए। अपने इस संशययुक्त, विक्षिप्त और मतभेदी मन से ही अगर हम आत्मा के बारे में सोचना शुरू करें तो वह भी सही दिशा में उठाया एक छोटा-सा ठोस कदम होगा। लक्ष्य है मंजिल तक पहुँचना; चाहे धीमी गति से या फिर हवाई जहाज की रफ्तार से – यह तो हम पर निर्भर है। परन्तु इन प्रश्नों पर जब तक चिंतन नहीं किया जाएगा तब तक हम उस आनन्द बिन्दु का अनुभव नहीं कर सकते जिसकी हमें खोज है।

जिसकी तुम्हें तलाश है वह तुम्हारे भीतर ही है। तुम्हारे भीतर समाई सच्चिदानन्द आत्मा के कारण तुम परिपूर्ण और पवित्र हो, परन्तु तुम्हें यह नहीं मालूम। हाँ, उस दुर्लभ आनन्द के अनुभव का तुम्हें एक धुँधला नजारा जरूर है जिस कारण तुम हमेशा उसकी तलाश बाहरी दुनिया में करते रहते हो। ठीक उसी तरह जैसे कस्तूरी मृग अपने ही भीतर से उत्पन्न मादक सुगंध को बाहर खोजता है। उसे नहीं मालूम कि सुगंध का स्रोत उसके भीतर छिपा है। अविद्या के कारण वह जिंदगी भर सुगंध की खोज में दौड़ते रहता है। एक दिन सत्य को बिना जाने वह थक कर जंगल में गिरकर मर जाता है। हम भी उस कस्तूरी मृग की तरह परम आनंद को बाहर ही खोजते रहते हैं, जबकि वह आनन्द हमारे भीतर समाया है।

ज्ञानयोग के सोपान

ज्ञानयोग की शुरुआत आत्मा के अस्तित्व और उसके स्वरूप की जिज्ञासा से होती है। जैसे हठयोग, राजयोग, भक्तियोग व अन्य योग मार्गों में मंजिल

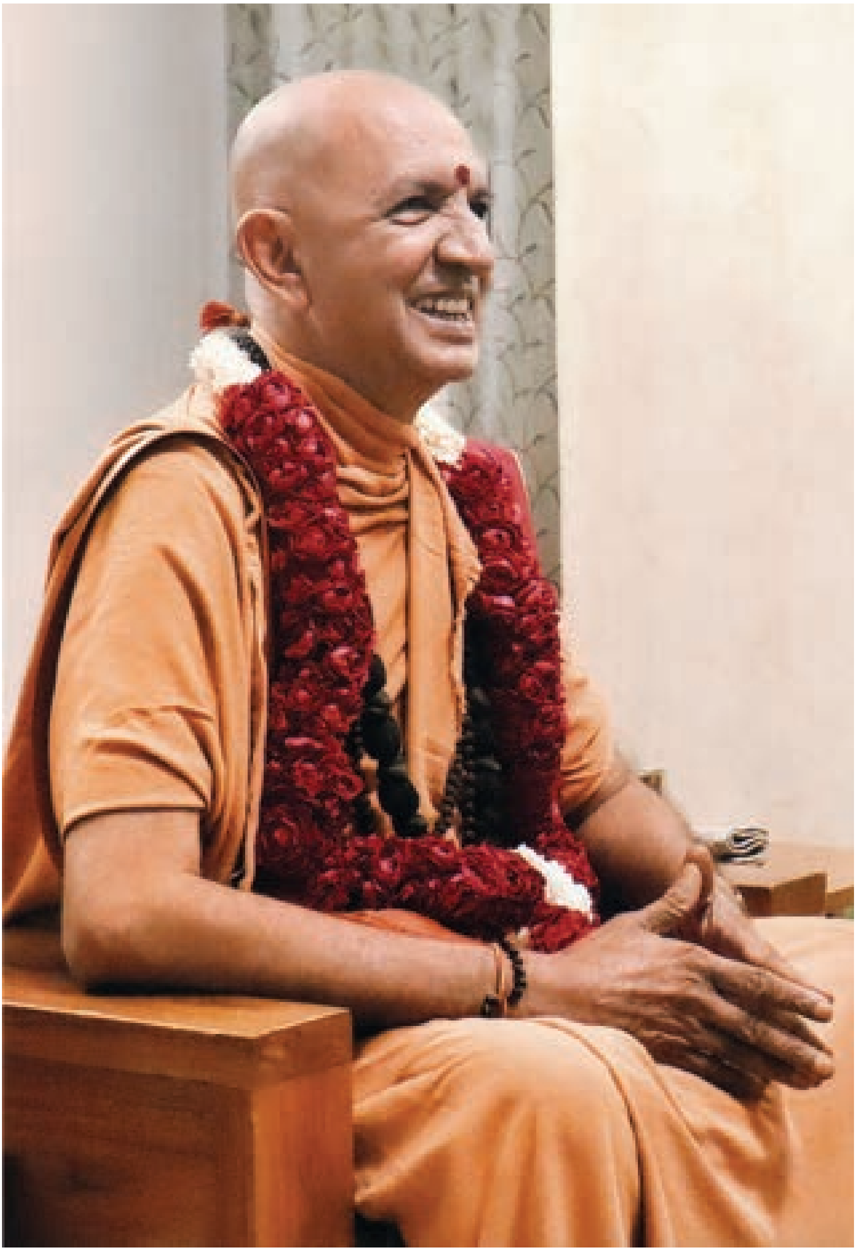

योग साधना सत्र
YOG SADHNA SATRA
अध्यात्म में प्रवेश - STEP INTO SPIRITUALITY
भारत योग यात्रा - BHARAT YOGA YATRA, DELHI - 2025
9,10 और 11 मई 2025 | त्यागराज स्पोर्ट्स स्टेडियम, दिल्ली
Under the guidance of Sri Swami Niranjanananda Saraswati, Paramacharya, Bihar School of Yoga
Vishwa Yogapeeth, Ganga Darshan, Munger, Bihar
दिल्ली के नागरिकों के सहयोग से, बिहार योग विद्यालय,
With the cooperation of the citizens of Delhi, inspired by the

निरंजनानंद
बिहार योग विद्यालय
सान्निध्य में
जून
ज्ञान

पाने के लिए विशिष्ट अभ्यास बतलाये हैं, ठीक उसी तरह शास्त्रों ने ज्ञानयोग के कुछ अभ्यास निर्धारित किये हैं। सबसे पहले आता है श्रवण। ज्ञानयोग के सम्बन्ध में श्रवण का तात्पर्य उस सर्वव्यापक चेतना या परब्रह्म-परमात्मा के बारे में सुनना है। यदि अपनी सांस्कृतिक या धार्मिक मान्यताओं के कारण आत्मा शब्द पसंद नहीं आए, तो उस शुद्ध चेतना को आप जिस भी नाम से पुकारना चाहें, वह नाम आप इस्तेमाल कीजिए। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, परन्तु सबसे पहले आपको वहाँ जाना चाहिए जहाँ आत्मा के बारे में चर्चा होती है या जानकारी मिलती है। जैसे आप अपने मनपसंद सिनेमा या भोजन या वस्त्र-आभूषण को खोज निकालते हैं, चाहे आपको मीलों क्यों न चलना पड़े, ठीक उसी तरह आपको वह स्थान खोजना चाहिए जहाँ आत्मा की चर्चा होती है।

आत्मज्ञानियों से आत्मा का श्रवण करने पर जो तेज और ऊर्जा प्राप्त होती है उसे फिर अपने भीतर सम्भाल के रखना चाहिए ताकि सांसारिक गतिविधियों से वह ऊर्जा बिखर न जाए। जिस प्रकार आप कीमती हीरे को बड़ी हिफाजत से छिपाकर रखते हैं, ठीक वैसे ही आत्म तत्त्व के बारे में जो विचार आपको मिले और जो शब्द आप सुनें, उन्हें अपने भीतर समाकर उन पर गहराई से आत्मचिंतन करना चाहिए। यह ज्ञानयोग का दूसरा अभ्यास माना जाता है, जिसको मनन कहते हैं।

अगर श्रवण के द्वारा जो हमने सुना उस पर मनन न किया जाए, तो श्रवण से प्राप्त हुआ ज्ञान बिखर जाता है। अनेक बार हम आत्मा की चर्चा सुनते हैं जिससे हम बहुत प्रभावित और प्रेरित भी होते हैं। परन्तु घर लौटने पर वापस अपनी दुनिया में खो जाते हैं। हमारी चिंता, ईर्ष्या, द्वेष, राग, लोभ, क्रोध इत्यादि हम पर हावी होकर सब भुला देते हैं। ऐसा नहीं होने देना। तुम्हारा स्वभाव जैसा हो वैसे रहो, पर आध्यात्मिक मार्ग को यह समझकर पकड़े रहो कि वह बहुत ही अमूल्य चीज है। जब तुम अकेले अपने कमरे में रहो तब उसके बारे में चिंतन और मनन करो। मजे की बात तो यह है कि जितना तुम आत्मा के सत्य पर चिंतन करोगे उतनी ही वह तुम्हें अपने बारे में झलक देती रहेगी। तुम सत्य की ओर एक कदम बढ़ाओ और सत्य तुम्हारी ओर छलांग लगाकर अनेकानेक चीजों का उद्घाटन करता है। यही सत्य आत्मा की शक्ति है और अगर ऐसा न होता तो हम उस आत्मशक्ति को सर्वश्रेष्ठ कैसे कह सकते? वह तो सर्वश्रेष्ठ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक है, इसीलिये उसमें

तुम्हारा मार्गदर्शन करने की क्षमता है। तुम्हे बस सच्चे दिल से चेष्टा करने की आवश्यकता है। और जैसे ही तुम इस तरह सत्य पर मनन करते हो, अनायास ही ध्यान लग जाता है। कोई प्रयास की आवश्यकता नहीं। अपने से, बिना चेष्टा के आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है। यह ज्ञानयोग का तीसरा अभ्यास है, जिसे निदिध्यासन कहते हैं।

इस प्रकार ज्ञानयोग के ये तीन सोपान हैं, श्रवण – सुनना; मनन – चिंतन करना और निदिध्यासन – ध्यान करना। अब आप यह पूछ सकते हैं कि 'मेरे लिये यह कितना व्यावहारिक है? मुझे घर-समाज में सौ-सौ काम रहते हैं। ऐसे में आत्मा के बारे में चिंतन करना कितना सम्भव है?' इसके जवाब में हम यही कहेंगे कि अगर आपके समाज में सच्चाई जानने का न कोई स्थान है, न ही रुचि, तो उस समाज को त्याग देना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि सच्चाई के मार्ग पर कोई समझौता नहीं हो सकता। सत्य अनादि है और यदि हमारे समाज में सत्य की कोई जगह नहीं है, तो ऐसे समाज का क्या उपयोग? हमें चयन करना होगा कि क्या हम सत्य के साथ जीना चाहते हैं या असत्य के साथ। हो सकता है कि हम में समाज को बदलने की ताकत न हो, परन्तु अपने आप को बदलने की क्षमता तो अवश्य हर व्यक्ति में रहती है।

आत्म-चिंतन एक व्यक्तिगत क्रिया है और किसी भी परिस्थिति में इसका अभ्यास निश्चित रूप से किया जा सकता है। हर रोज जब सब काम हो जाएँ, सोने के पहले आत्मचिंतन के लिए थोड़ा समय दिया जा सकता है। या फिर सुबह उठकर इन विषयों पर कम-से-कम दस मिनट मनन किया जा सकता है। आप एक डायरी भी रख सकते हैं जिसमें आप दिन-ब-दिन अपने अनुभवों और विचारों को अंकित कर सकते हैं। यह सरल अभ्यास आप को बहुत सारी सच्चाइयों से अवगत कराएगा।

इस प्रक्रिया को ज्ञानयोग कहते हैं और इसका अभ्यास तभी सम्भव है जब मन की वृत्तियों पर हमारा बस चले। अन्यथा आत्मचिंतन के लिए बैठते ही मन उन चीजों की ओर भागता है जिनका आत्मा के साथ कोई लेना-देना नहीं। कोई मित्र याद आ जाता है या कोई शत्रु जिसे आप पसंद नहीं करते। ये सब विचार सामने आने लगते हैं और आत्मा के विचार लुप्त हो जाते हैं। असलियत तो यही है और इसीलिए ज्ञानयोग का अभ्यास गुरु के मार्गदर्शन में ही करना चाहिए।

कर्मयोग की साधना

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

निष्काम सेवा-कार्यों में अपने को पूर्णत: संलग्न रखिए। बन्द कमरे में या गंगाजी के तट पर घण्टों ध्यान करने से कोई लाभ नहीं। आप कितने घण्टे ध्यान कर सकते हैं? अपने से पूछिए। आधा घण्टा, अथवा एक घण्टा, यही न? उसके बाद आपका मन भटकने लगता है, अनेकानेक विचार आते हैं, आप मनोराज्य में विचरण करने लगते हैं। आप अपने विचारों को नियन्त्रित करने तथा लक्ष्य पर मन को एकाग्र करने में सफल नहीं होते। उसका कारण क्या है? बुरे संस्कार ही इसके कारण हैं। आप में शम का गुण नहीं है। आपका मन सांसारिक विचारों से सदा अशान्त बना रहता है। आपने निष्काम सेवा के द्वारा अपने हृदय को शुद्ध नहीं बनाया है। अनवरत निष्काम सेवा द्वारा ही आप अपने बुरे संस्कारों का प्रक्षालन कर सकते हैं। तब आपको शान्ति तथा शम की प्राप्ति होगी तथा पूर्ण एवं गम्भीर ध्यान लग सकेगा।

बहुत-से साधक ऐसी शिकायत करते हैं कि सदा सेवा में संलग्न रहने के कारण उन्हें जप, ध्यान आदि का समय नहीं मिलता। मैं उनसे कहूँगा कि वे किसी एकान्त स्थान में या अपने कमरे में एक या दो दिन बन्द रहकर देखें कि कब तक ध्यान लगता है। नये साधक के लिए प्रतिदिन चौबीस घण्टे ध्यान करना सम्भव नहीं है। मन किसी-न-किसी वस्तु में अपने को लगाये रखना चाहता है। क्या आपने किसी व्यक्ति को गंगा-तट पर ध्यान करते देखा है? आप निरीक्षण कीजिए। वह अधिक-से-अधिक एक घण्टा ध्यान करेगा और फिर वह कंकड़ों को फेंकने लगेगा या ऐसा ही कुछ व्यर्थ काम करने लग जायेगा, क्योंकि मन को विविधता चाहिए। आपको अपने मन को दूसरों की भलाई में सदा लगाये रखना चाहिए। सेवा ही आपको सब-कुछ प्रदान करेगी। सेवा के द्वारा आप आत्म-साक्षात्कार कर सकते हैं। इसके साथ-साथ आपको जप, ध्यान तथा अन्य साधनाएँ चालू रखनी चाहिए। समन्वय योग से ही आप पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं।

वास्तव में कर्मयोग ही सभी साधकों के लिए सर्वोत्तम क्षेत्र है, क्योंकि यहाँ आपको सभी साधनाओं का सुन्दर समन्वय मिल जाता है, जो मन के लिए बहुत आकर्षक तथा आधुनिक व्यक्तियों के लिए भी अनुकूल है। आप

कह सकते हैं कि उन्नत साधकों के लिए निष्काम सेवा की आवश्यकता नहीं है, परन्तु ऐसे साधक कितने हैं? वे बहुत ही कम हैं। बहुत उन्नत महात्मा ही अहर्निश ध्यान में निमग्न रह सकते हैं। परन्तु साधारण वर्ग के लिए यह समन्वय-योग ही सर्वोत्तम है।

बहुत-से लोग अपने घर-परिवार को त्याग कर शान्त वातावरण की खोज में निकल पड़ते हैं। बहुत कम लोग ही शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति के लिए त्याग करते हैं। वे ऋषिकेश या उत्तरकाशी जैसे स्थानों में जाते हैं, परन्तु उन्हें मिलता क्या है? जहाँ भी वे जायें, एक ही किस्म की दुनिया है। क्यों? इसलिए कि वे अपने मन को सर्वत्र ले जाते हैं। मन सभी प्रकार की मलिनताओं से संतृप्त है। वह समाज तथा अन्य रोचक वस्तुएँ चाहता है। बिना काम के वह एकान्त में कभी नहीं रहता। अत: ऐसे साधकों के लिए कर्मयोग सर्वोत्तम है।

परिस्थितियों से समन्वय

मनुष्य को चाहिए कि वह सभी प्रकार की परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढाल सके। मान लीजिए कि आप गम्भीर ध्यान कर सकते हैं, आप शान्तिप्रिय, एकान्तप्रिय साधक हैं, तब आप उत्तरकाशी जैसे किसी निर्जन स्थान में जा सकते हैं। परन्तु पाँच वर्ष के बाद जब आप समाज में आयेंगे तो आपका मन बड़ा अशान्त रहेगा, आप परिस्थितियों को बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे। आप शोरगुल के बीच ध्यान नहीं कर सकेंगे तथा बाह्य वातावरण से बहुत जल्द ही प्रभावित हो जायेंगे। आप जल बिना मछली की भाँति रहेंगे। क्या यही आपकी पाँच वर्षों की साधना का फल है? आपके गहन ध्यान का लाभ ही क्या? आपका मन के ऊपर नियन्त्रण नहीं, आप कटु शब्दों को सहन नहीं कर सकते, आप अपमान, नुकसान आदि से अशान्त हो जाते हैं। इतने दिनों के एकान्तवास से क्या लाभ जब आप छोटे-छोटे प्रलोभनों के भी शिकार बन जाते हैं तथा सांसारिक वातावरण को सह नहीं सकते? आपको उग्रतापूर्वक अपने मन को अनुशासित करना चाहिए, जिससे कि वह विक्षेप तथा कोलाहल में भी अविचल रह सके। आप दूसरों के अनुकूल बनें, सहनशील, मिलनसार तथा सेवापरायण बनें। आपको सभी प्रकार के मनुष्यों के साथ मिलकर रहना चाहिए तथा दूसरों के लिए हितकर होना चाहिए। आपको गरीब, बीमार तथा पीड़ित व्यक्तियों में उसी भगवान की पूजा करनी चाहिए जिसकी आप अपने हृदय-निकेतन में करते हैं, तभी आपकी साधना में सफलता है।

यदि आप पाँच वर्ष तक मौन रहें, तो आपकी बोली तुतली हो जायेगी। आप दूसरों से ठीक-ठीक बातें नहीं कर सकेंगे? क्या आपको अपनी साधना से यही पाना है? बुद्धिमान बनिए। विवेकी बनिए। अपने विचारों का विश्लेषण कीजिए। वीरतापूर्वक घोषणा कीजिए, 'मैं अपना सम्पूर्ण जीवन दूसरों की सेवा में बिताऊँगा, चाहे मुझे मुक्ति मिले या न मिले।' हर साधक की ऐसी ही वीरतापूर्ण घोषणा होनी चाहिए। आप जिस किसी के सम्पर्क में आयें, उसे भी इस बात की शिक्षा दें।

यदि आप सच्चे साधक हैं, तो एक बार *तत्त्वमसि* कह लेने पर ही आप समाधि में प्रवेश कर जायेंगे। राजा जनक इसी तरह के साधक थे। नौ बार *तत्त्वमसि* कहने पर श्वेतकेतु को आत्मज्ञान हो गया। परन्तु आप क्यों नहीं साक्षात्कार करते? जिस क्षण आप *तत्त्वमसि* सुनें, आपका हृदय पिघल जाना चाहिए। आपकी भावना गम्भीर होनी चाहिए, अन्यथा आप *सोऽहम्*, *शिवोऽहम्* और *अहं ब्रह्मास्मि* का हजारों बार जप क्यों न करें, उससे कोई लाभ नहीं, क्योंकि आप उसके महान् अर्थ का अनुभव नहीं करते। आप केवल समय का अपव्यय कर रहे हैं।

सत्संग के समय मैंने कुछ लोगों को माला घुमाते देखा है। इस वृन्दावन-विधि से कोई लाभ नहीं। जब सत्संग चल रहा है, तब व्यक्ति जप के ऊपर पूर्णत: एकाग्रता नहीं रख सकता तथा सत्संग में क्या बताया जा रहा है, इसका भी ज्ञान नहीं रख सकता। इस प्रकार उसे किसी तरह का भी लाभ नहीं होता। सत्संग में बहुत लाभदायक बातें बतायी जाती हैं, यदि वह उनका पालन करे तो उसे कितने अच्छे विचार प्राप्त हों। वह बहुत लाभ उठायेगा, परन्तु वह समझता है कि बिना एकाग्रता के ही माला जपने से उसे अधिक लाभ मिल जायेगा। सच्चे बनिए। आध्यात्मिक जीवन मजाक नहीं है। गम्भीर सेवा के द्वारा हृदय के मल को धो डालिए तथा अशेष आत्मार्पण के द्वारा हृदय को रंग डालिए। उसमें विवेक तथा विचार की पॉलिश कीजिए। तभी आप सर्वशक्तिमान् ईश्वर को उसकी पूर्ण महिमा में अपने हृदय के अन्दर प्राप्त करेंगे।

समन्वय-साधना की सरल विधि

मैं आपको सुन्दर विधि बतलाता हूँ, जिससे काम करते हुए भी आप समन्वय-साधना का अभ्यास कर सकेंगे। एक या दो घण्टे खूब काम कीजिए। अब आपका मन पूर्णत: काम से सन्तृप्त है। आप बाह्य जगत् की चेतना नहीं रखते।

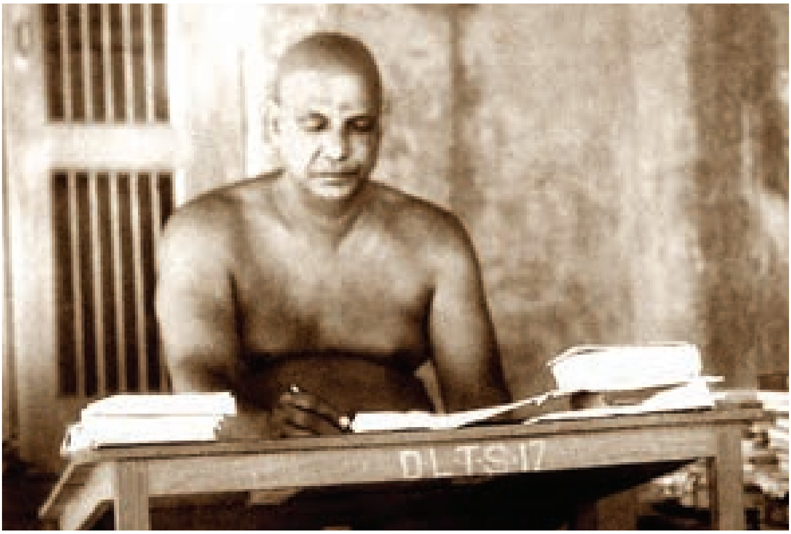

आप पूर्णत: डूबे हुए हैं। अब सब काम बन्द कर डालिए। आँखें बन्द कर लीजिए तथा धीरे-धीरे मन को समेट लीजिए। काम के बारे में भूल जाइए। धीरे-धीरे अपने विचारों को समेटकर इष्ट देवता पर एकाग्र कीजिए। शान्त बन जाइए। पूर्णत: शिथिल हो जाइए। आपका मन स्वभावत: लक्ष्य पर स्थिर होना चाहिए। दस मिनट के बाद पुन: अपनी पहली अवस्था में आकर काम करना प्रारम्भ कीजिए। आपको नयी शक्ति प्राप्त होगी, आप में स्फूर्ति आयेगी तथा आप आश्चर्यजनक रूप से काम कर सकेंगे।

यदि आप विघ्नों के कारण ध्यान करने में असमर्थ हैं, तो मन्त्र-पुस्तिका लेकर उसमें दस मिनट तक मन्त्र लिखिए। अपने विचारों को लिखित जप पर एकाग्र कीजिए। यदि यह भी रुचिकर न हो, तो कोई सद्ग्रन्थ पढ़िए तथा उसके विचारों पर मनन कीजिए अथवा गीता के कुछ श्लोकों को दुहराइए अथवा मानसिक जप प्रारम्भ कर दीजिए। इस तरह आप पाँच या दस मिनट का सदुपयोग कर सकते हैं। पुन: अगले दो घण्टे तक काम कीजिए तथा इसी विधि को दुहराते जाइए। मन को विविधता प्राप्त होगी और आप अधिक दक्षतापूर्वक काम कर सकेंगे, साथ-ही-साथ आप अपनी साधना भी करते जा रहे हैं।

इसी तरह आप ध्यान का भी अभ्यास कर सकते हैं। आप आधे घण्टे तक गम्भीर ध्यान कर सकते हैं, इसके बाद मन भटकने लगेगा। आप बहुत-से व्यर्थ विचार तथा बुरी बातों को ही सोचने लगेंगे। क्या आपने सावधानीपूर्वक

इस पर विचार किया है? ध्यान करते समय मन में कितने विविध विचार प्रकट होते हैं? आपका ध्यान लक्ष्य से हट जाता है तथा आप उस क्षण उसकी चेतना नहीं रखते। आप बहुत-से विचित्र विचारों, विषयों तथा घटनाओं के बारे में सोचने लगते हैं। आपका ध्यान उन पर केन्द्रित हो जाता है। आपको बार-बार मन की बिखरी किरणों को समेटकर लक्ष्य पर लगाना होगा। यदि ऐसा करने में कठिनाई हो तो आपको ध्यान बन्द करके कीर्तन प्रारम्भ करना चाहिए अथवा कुछ समय के लिए कुछ श्लोकों का पाठ करना चाहिए। आप कोई पुस्तक पढ़ सकते हैं अथवा इष्टमन्त्र लिख सकते हैं अथवा अपने कमरे के बाहर टहल सकते हैं। इससे आपका मन स्फूर्ति प्राप्त कर लेगा तथा आप पुन: गम्भीरतापूर्वक ध्यान कर सकेंगे। जब ध्यान श्रम-साध्य, कठिन तथा शुष्क होने लगे, तो आपको इस विधि को दुहराना चाहिए।

कर्म को योग में परिणत किया जा सकता है

अपने सामने सदा आत्मसाक्षात्कार का लक्ष्य बनाये रखिए। निस्सन्देह आप नित्य हैं तथा आपके समक्ष अमरत्व है। आप अमर हैं। आप काल से परे हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि आप इस जन्म में साक्षात्कार प्राप्त करने के साधनों को ढीला छोड़ दें। आपको नहीं मालूम कि यह मानव जन्म आपको पुन: कब मिलेगा। आप पशु या देव-योनि में ईश्वर-साक्षात्कार नहीं कर सकते। इन दोनों प्रकार की योनियों में जीव अपने कर्मानुसार या तो कष्ट भोगता है या सुख। कर्म-भोग समाप्त हो जाने पर उसे पुन: मानव-जन्म को प्राप्त करना पड़ता है, जिससे उसे आत्म-साक्षात्कार का दूसरा सुयोग प्राप्त हो सके। इससे ही आप समझ लें कि इसी जन्म में आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना कितना आवश्यक है। अन्तर्निरीक्षण द्वारा आपको प्रतिदिन यह पता लगा लेना चाहिए कि आप उन्नति कर रहे हैं अथवा नहीं। यह बहुत आवश्यक है, अन्यथा आप मार्ग को भूल सकते हैं। अन्तर्निरीक्षण कीजिए। पता लगाइए। माया आपको मोहित तथा पथ-भ्रष्ट करने के लिए सदा घात लगाये बैठी है। सावधान रहिए। उसके बहुत रूप हैं। सेवा का अभिमान, पद का दर्प, सफलता का अहंकार, लाभ से आसक्ति, आराम की कामना, अधिकार का लोभ, अधिकार-प्राप्ति में बाधक जनों के प्रति द्वेष तथा गौरव की भावना से दूसरों पर शासन करने, उन्हें दबाने की भावना – ये कुछ स्वर्गिक अप्सराएँ हैं जो आपके चतुर्दिक् आपको प्रलोभित करने के लिए बाट देखती रहती हैं। सावधान!

आप अपने प्रत्येक कर्म को उस स्रोत के निर्माण के लिए प्रयुक्त करें, जिससे भगवद्विचार की धारा अविच्छिन्न रूप से सतत् प्रवाहित होती रहे। 'कर्म भगवान की पूजा है', इस भाव को बनाये रखिए। यह माया के प्रलोभनों को निष्क्रिय बनायेगा। यह भी जान लीजिए कि स्वरूपत: आप अकर्ता तथा अभोक्ता हैं। ईश्वर आपके द्वारा ही अपने अनिर्वचनीय उद्देश्यों को पूर्ण करता है, फिर आपको पुण्यापुण्य की भावना रखने से लाभ ही क्या? वह एक आत्मा जो आप में है, वही सर्वत्र है। इस अखिल जगत् में अन्य कुछ नहीं है। कौन आपका मित्र है और कौन शत्रु? कौन आपसे बड़ा है और कौन आपसे छोटा? कौन आपको ठग सकता है और आप किसको ठग सकते हैं? प्रेम कीजिए, निश्छल प्रेम कीजिए।

सब-कुछ आपकी आत्मा ही है। क्या आप जान-बूझ कर अपना गला काट सकते हैं? जब आप मन, वचन अथवा कर्म से दूसरों को हानि पहुँचाते हैं, तो आप यही करते हैं। पुन: कल्पना कीजिए कि यदि आपकी ऊँगली आपको चोट पहुँचा दे, तो क्या आप उसे काट फेंकेंगे? इसी तरह जब आपका भाई गलती से आपको चोट पहुँचा दे, तो आप उससे बदला न लें। जो कुछ प्राप्त हो, स्तुति अथवा निन्दा, मान अथवा अपमान, राग अथवा द्वेष, लाभ अथवा हानि – सब-कुछ ईश्वर का आशीर्वाद समझ कर ग्रहण कीजिए। जो भी आपके सम्पर्क में आये, उसे ईश्वर की प्रतिमूर्ति समझिए। सभी को नमस्कार कीजिए। तिनके से भी अधिक नम्र होना, यही आपका आदर्श हो। जब आप सब में ईश्वर ही देखेंगे, तो आलोचना को आप सहन ही नहीं करेंगे, बल्कि उसे पसन्द भी करेंगे। कोई व्यक्ति यदि आपकी आलोचना करता है तो समझिए कि वह ठीक ही कह रहा है, क्योंकि वह ईश्वर है। आलोचना पर विचार कीजिए तथा ठीक निर्णय पर पहुँचिए। इस प्रकार आप प्रतिकार करने की भावना से बच जायेंगे। आप धैर्य तथा सन्मति का विकास करेंगे तथा हर व्यक्ति की शुभेच्छा को प्राप्त करेंगे। मौन तथा एकान्त में आपको अन्तर्निरीक्षण करना चाहिए तथा समालोचना-सम्बन्धी बातों पर विचार करना चाहिए। एकान्त में आपके आवेग शान्त हो जायेंगे तथा आप ठीक निष्कर्ष पर पहुँच सकेंगे। इन उपदेशों का पालन कर आप सभी कार्यों को, चाहे वे धार्मिक हों अथवा लौकिक, यहाँ तक कि परिवार की सेवा को भी पूजा-कार्य में बदल सकते हैं, जिससे आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे। आप सभी पूर्ण कर्मयोगी बनें!आप सभी कर्मयोग से प्राप्त हृदय की शुद्धि के द्वारा नित्य तत्त्व का साक्षात्कार करें!

क्रियायोग के साधकों से

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग, तन्त्र और प्रायः अन्य सभी आध्यात्मिक पद्धतियों की विषय-वस्तु ऊर्जा है जो कई नामों से जानी जाती है। ऊर्जा शक्ति है और इसमें रूपान्तरण का गुण है। जैसे हम लकड़ी का एक टुकड़ा आग में डालते हैं और लकड़ी का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है, वैसे ही हमें अपने शरीर को सूक्ष्म ऊर्जाओं के हवाले कर देना है। इस स्थूल पार्थिव शरीर को चेतना में रूपांतरित करने का दायित्व ऊर्जा पर है। यही हमें समझना है।

इसलिए योग, तन्त्र और अन्य आध्यात्मिक साधनाओं में शरीर, इन्द्रियों, प्राण-शक्ति और मन को ऊर्जा के अधीन करना पड़ता है। ऊर्जा वह अभिव्यक्ति है जिसके द्वारा सम्पूर्ण पदार्थ परिशोधित हो जाता है। जब पदार्थ पूर्णतः परिशोधित हो जाता है, तब यह चेतना का रूप ले लेता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु ऋषि-मुनियों ने क्रियायोग के अभ्यासों का विकास किया था।

मिथ्या अवधारणाओं से उलझना

मन के साथ उलझ कर, उसे दमित और प्रताड़ित कर अथवा उसकी आलोचना या निन्दा कर हम किसी बिन्दु पर नहीं पहुँच सकते, इस बात को निश्चित जान लो। इसी कारण मन को दमित करने वाले विभिन्न मार्गों का अनुसरण करने वाले लाखों लोग विकास के किसी बिन्दु पर नहीं पहुँच पाये हैं।

विकास-क्रम दमन नहीं है, यह रूपान्तरण है। क्या तुमने खिलते पौधे को देखा है? बीजावस्था से विकसित होकर वह एक सुन्दर फूल को जन्म देता है। इसे रूपांतरण कहते हैं। इसी प्रकार मनुष्य की विकास-प्रक्रिया भी अबाधित रूप से चलनी चाहिए। सच तो यह है कि इस प्रक्रिया से मन को कुछ लेना-देना नहीं है। जब तुम पदार्थ को ऊर्जा के हवाले कर देते हो, इसी के साथ तुम अपना मन भी ऊर्जा को सौंप देते हो। और जब ऊर्जा भौतिक तत्त्वों का परिशोधन करती है तो वह मन को भी परिशुद्ध कर देती है।

यदि तुम सोचते हो कि मन द्वारा ही मन का परिशोधन किया जा सकता है तो तुम गंदगी को गंदगी से साफ करने की बात सोच रहे हो। तुम कचरे को कचरे से साफ नहीं कर सकते। उसे स्वच्छ जल से साफ करना पड़ता

है। बहुत सारे लोग मन से लड़ते आ रहे हैं। वे अपने विचारों, वासनाओं, महत्त्वाकांक्षाओं एवं दुर्व्यसनों को दमित करना चाहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि वे मिथ्या अवधारणाओं से, अवास्तविकताओं से लड़ रहे हैं।

इससे जुड़ा एक किस्सा याद आता है। एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर में बैठकर चाय पी रहा था कि उसके मित्र ने आकर कहा, 'मुल्ला नसरुद्दीन, मुझे तुमसे कुछ गोपनीय बात कहनी है। एक अति विश्वसनीय सूत्र से पता चला है कि तुम्हारी पत्नी तुम्हारे एक दोस्त से प्रेम करती है, हर रात बारह बजे वह तुम्हारे बगीचे में जाती है और वहाँ आम के पेड़ के नीचे दोनों मिलते हैं।'

मुल्ला नसरुद्दीन गुस्से से आग-बबूला हो गया और चिल्ला उठा, 'लानत है!' उसका मन बेकाबू हो गया। शाम होते-होते उसने अपनी राइफल साफ कर ली थी और आधा दर्जन बार गोलियों की जाँच कर ली थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह आता, राइफल और गोलियों की जाँच करता। छः बजते-बजते वह अपने बगीचे में उस आम के पीछे अपनी राइफल ताने हुए उस क्षण का इंतजार करने लगा कि जैसे ही वे दोनों आयें, वह घोड़ा दबा दे।

रात के दस बज गये, ग्यारह बज गये, बारह बज गये, लेकिन कोई आया नहीं। मुल्ला नसरुद्दीन ने मन-ही-मन कहा, 'आखिर बात क्या है? क्या उन दोनों को मालूम हो गया है कि मैं यहाँ उनका इंतजार कर रहा हूँ।' तब वह सोचने लग गया और सोचते-सोचते उसे याद आया कि अभी तक तो उसकी शादी ही नहीं हुई। मुल्ला घर लौट गया, राइफल से गोलियाँ निकालीं और आराम से सो गया।

मन से बोझ उतारना

वास्तव में हमें यही करना है। अपनी राइफल, जो हमने अपने मन में तान रखी है, उसे उतार लेना है, क्योंकि मन के बारे में हम अभी तक जो सोचते आ रहे हैं, वह कपोल-कल्पना मात्र है। मन नामक कोई चीज नहीं है। हम समाज में रहते हैं और सामाजिक एवं पारिवारिक प्रभावों के अनुरूप एक विशेष साँचे में ढल गये हैं, जिसके अनुसार हम सोचा करते हैं। हमारे विचार, हमारा चिन्तन, हमारी वासनाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ और इच्छाएँ मन से बिल्कुल सम्बन्ध नहीं रखतीं।

आजकल लोगों के पास मोटर कारें हैं, इसलिए हमलोग भी कार की इच्छा रखते हैं। हम हाथी रखने की इच्छा नहीं करते, क्योंकि अब लोगों

के पास हाथी नहीं रहा करते, मगर कोई सौ साल पहले हमलोग हाथी की इच्छा करते। निश्चय ही उन दिनों हाथी रखना गौरव की बात थी। लोग कहा करते थे, 'कितना बड़ा आदमी है, उसके पास हाथी है!' अब तो हाल यह है कि हाथी रखने की बात ही नहीं सोचते, लेकिन हर आदमी के पास हैलिकॉप्टर होने लगे तो हम लोग कभी कार लेना नहीं चाहेंगे। ऐसा होता है न?

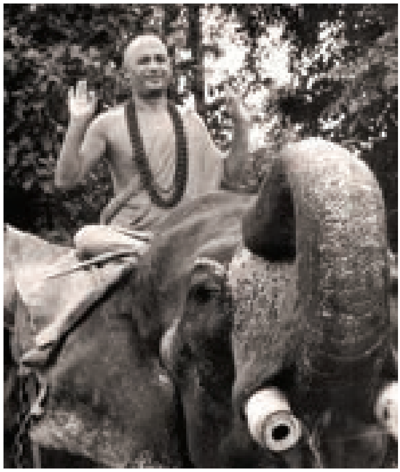

हमारी सभी इच्छाएँ बाहर गढ़ी जाती हैं और हमारे भीतर डाल दी जाती हैं। हम स्वतंत्र विचार करने वाले नहीं हैं, बल्कि सामाजिक कुसंस्कारों के पुतले हैं। हम सभी के दिमागों में कुसंस्कार भर दिये गये हैं। माता-पिता, शिक्षक, समाज, विज्ञापन, दूरदर्शन, समाचार-पत्र आदि सभी अपने विचारों को आरोपित करने में लगे हैं। हर समय हमारे मन को ब्रेन-वॉश किया जा रहा है। हम अपने मन के बोझ को हल्का करने के लिए ही आश्रम में आते हैं। जो भी हमारे मन में ठूँस दिया गया है उसे निकाल बाहर करना है। इसलिए क्रियायोग के साधकों को अपने मानसिक व्यवहार के संबंध में चिन्ता नहीं करना चाहिए। उन्हें मन की चिन्ता छोड़कर अपनी क्रियाओं को करते जाना चाहिए।

शिक्षण और सम्प्रेषण

आश्रम में प्रशिक्षण दो स्तरों पर एक ही साथ चलता है। एक शिक्षण है और दूसरा सम्प्रेषण। शिक्षक बाह्य रूप से तुम्हें क्रियायोग की विधियाँ सिखायेगा, जबकि गुरु और शिष्य आंतरिक रूप से सम्प्रेषण विधि द्वारा ज्ञान एवं अनुभव आदान-प्रदान करेंगे। शिक्षक द्वारा क्रियायोग के जो अभ्यास तुम्हें सिखाए जायेंगे वे तुम्हें उस स्तर तक उठा देंगे कि तुम गुरु द्वारा प्रेषित ऊर्जा को ग्रहण करने में सक्षम हो जाओगे।

गुरु और शिक्षक में अन्तर होता है। शिक्षक गुरु नहीं है, वह बौद्धिक स्तर पर अभ्यास सिखाता है। दूसरी ओर गुरु ऊर्जा, प्रेरणा और आवश्यक अनुभूतियों का स्थानांतरण एवं सम्प्रेषण करता है। साधक अपने शिक्षक की

सहायता से अपने मानसिक ढाँचे को सुधार-सँवार कर ऐसा बनाता है कि वह अपने गुरु के साथ सीधा सम्पर्क साध सके।

आश्रम में विद्या शिक्षण एवं सम्प्रेषण, दोनों विधियों से प्रदान की जाती है। दीक्षा एक औपचारिकता भर नहीं है। दीक्षा गुरु और शिष्य के बीच आंतरिक शक्तियों का हस्तांतरण और सम्प्रेषण है और सदा इसी विधि से गुरु और शिष्य के बीच संबंध-सूत्र कायम रहा है। संक्षेप में क्रियायोग सीखने वालों तथा मेरे बीच यही संबंध है।

एक प्राचीन परम्परा

क्रियायोग एक अत्यंत शक्तिशाली विधि है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमें प्राप्त होती रही है। समय-समय पर महान् और प्रज्ञावान् गुरुओं द्वारा विभिन्न भू-खण्डों में इस विद्या का प्रचार किया गया। आज ही नहीं, अतीत काल में भी क्रियायोग की शिक्षा-दीक्षा होती थी। बाईबिल में एक स्थान पर एक सीढ़ी का वर्णन किया गया है जो धरती से स्वर्ग की ओर जाती है। तुम आधी दूरी सीढ़ियों पर आँखें बंद कर और आधी दूरी आँखें खोलकर पूरी करते हो। सीढ़ी के पाये क्रियायोग के विभिन्न अभ्यासों के प्रतीक हैं।

भारत में क्रियायोग तांत्रिक परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता था। ईसाई मत के आगमन के बहुत पूर्व विश्व के कोने-कोने में तांत्रिक परम्परा पहुँच चुकी थी, किन्तु विभिन्न भू-खण्डों के लोग अपनी सांस्कृतिक सीमाओं और अपूर्णताओं के कारण तन्त्र की शुद्धता, महानता और भव्यता को नहीं बनाये रख पाये। फलस्वरूप, सुदूर पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में विभिन्न कालों में इसके विकास में अवरोध खड़ा हुआ, किन्तु भारत में प्रबुद्ध लोगों ने पूरी समझ-बूझ के साथ तांत्रिक परम्परा को कायम रखा और साधकों, सद्गृहस्थों एवं संन्यासियों को सिखाते रहे। तांत्रिक विधियों में क्रियायोग को सर्वोत्तम माना जाता है।

न तो मैं क्रियायोग का संस्थापक होने का दावा करता हूँ और न यह स्वीकार करता हूँ कि अन्य कोई व्यक्ति संस्थापक है। हम लोगों को ठीक-ठीक यह पता नहीं है कि क्रियायोग का प्रवर्तक कौन था। मेरा योगदान इतना ही है कि पहली बार क्रियायोग के अभ्यासों को संकलित कर पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया है। इसके पूर्व प्राचीन काल से अब तक विभिन्न ग्रन्थों में क्रियायोग के अभ्यासों के छिट-पुट प्रसंग उपलब्ध रहे हैं। विभिन्न ग्रन्थों एवं परम्पराओं

में उपलब्ध ये अभ्यास एक-दूसरे से थोड़े-बहुत भिन्न हो सकते हैं, किन्तु यह भिन्नता साधकों की गुणवत्ता के कारण ही है।

मन की चिन्ता मत करो

क्रियायोग के उन्नत अभ्यासों को आरंभ करने के पूर्व तुम्हें एक सरल किंतु महत्त्वपूर्ण संकेत दे रहा हूँ – मन की चिन्ता मत करो! तुम अपनी क्रियाएँ करते जाओ और यदि तुम्हारे भीतर मन है तो उसे अपने क्रियाकलाप करने दो। मन को बिखरने दो, भटकने दो, बंदर की तरह उछलने-कूदने दो अथवा सो जाने दो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

शिक्षक द्वारा दिये गये मार्गदर्शन के अनुरूप क्रियाएँ करते जाओ। बहुत आध्यात्मिक बनने की चेष्टा मत करो। अपने नेत्र खुले रखो। स्थिर होने की भी आवश्यता नहीं है। तुम विभिन्न वस्तुओं को देखते जाओ, नेत्रों को स्थिर करने की भी आवश्यकता नहीं है। शरीर एवं मन को भी शान्त करने की दरकार नहीं है। सिर्फ क्रियाओं का अभ्यास होना चाहिए और तुम पाओगे कि तुम्हारा ऊर्जा-क्षेत्र प्रभावित हो रहा है।

मैं हमेशा ऊर्जा क्षेत्र की बातें करता हूँ। मैं मानसिक क्षेत्र की बात कभी नहीं करता, क्योंकि यह नसरुद्दीन की पत्नी की तरह है जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। ऊर्जा एक वास्तविकता है और यह विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत है। चाहे खनिज पदार्थ हो या पेड़-पौधे या पशु-पक्षी या मानव जीवन, चाहे शरीर हो या प्राण या मन, ये सारी चीजें ऊर्जा के प्रकट रूप हैं। जब ऊर्जा स्थूल रूप में

प्रकट होती है वह पदार्थ कहलाती है और जब पदार्थ अपनी स्थूल परिसीमाओं से बाहर हो जाता है, वह ऊर्जा कहलाता है। यह शरीर, यह प्राण, मानसिक शक्तियाँ, विचार तरंगें, भावनाएँ, सभी पदार्थ ही हैं। उन्हें आध्यात्मिक मत कहो। वे सभी पदार्थ हैं और इस पदार्थ का रूपान्तरण करना है।

पदार्थ का ऊर्जा में यह रूपान्तरण मन की सहायता से नहीं हो सकता। यदि तुम उन मार्गों का अनुसरण करोगे जिनकी यह मान्यता है कि रूपान्तरण मन की सहायता से हो सकता है तो तुम्हारा मुल्ला नसरुद्दीन जैसा ही हाल होगा जो अपनी राइफल तानकर अपनी कल्पित पत्नी और उसके प्रेमी की प्रतीक्षा में बैठा था। इसलिए मैं कहा करता हूँ कि मन की चिन्ता मत करो। इन्द्रियों की भी चिन्ता मत करो। बस अभ्यासों को करते जाओ और ज्यों-ज्यों तुम इस पथ पर आगे बढ़ोगे तुम्हें उन बातों की अनुभूति होनी शुरू होगी जो इन्द्रियों के परे हैं।

जब तुम क्रियायोग करते जाओगे तो क्या होगा? वह आदि शक्ति जिसे हम कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं, उसका प्रवेश सुषुम्ना मार्ग में होगा और वह ऊपर उठेगी। उस समय अनेक तरह की अनुभूतियाँ हो सकती हैं। ये अनुभूतियाँ मात्र मानसिक स्वप्न नहीं हैं, तुम्हारे अस्तित्व के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत विभिन्न ऊर्जाओं की झलकियाँ हैं। अभी तुम्हारे लिए यह जानना संभव नहीं कि ऊर्जा क्या है और वह मानव-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कैसे कार्यरत है, लेकिन तुम इतना जरूर समझ सकते हो कि ये अनुभूतियाँ तब आती हैं जब तुम मन के साथ नहीं होते।

ऊर्जा की जागृति के फलस्वरूप सभी अंतरंग अनुभूतियाँ उच्चतर चेतना से उद्भूत होती हैं। मन से उत्पन्न अनुभूतियों, जैसे विषाद, निराशा, भय, चिन्ता, अशान्ति, अवसाद, वासना, महत्त्वाकांक्षा, घृणा आदि को तुम अच्छी तरह जानते हो। इस प्रकार मन से सैंकड़ों-हजारों अनुभूतियाँ उत्पन्न होती हैं, किन्तु इतना जान लो कि उच्चतर ज्ञान और उच्चतर अनुभव मन से कभी उत्पन्न नहीं होते। प्रज्ञात्मक ज्ञान का मन से कुछ लेना-देना नहीं है।

क्रियायोग के साधक के रूप में तुम्हें सहज भाव से जीना होगा। यदि साधना के दौरान कोई समस्या आती है अथवा कोई मानसिक परेशानी होती है तो उसकी परवाह मत करो। इसमें हानि क्या है? यदि भय आता है, वासनाएँ आती हैं, तो आयें। उनके साथ संघर्ष कर अपना समय नष्ट न करो। मन के रास्ते कोई समाधान नहीं प्राप्त हो सकता।

मन की समस्याएँ मुल्ला नसरुद्दीन की समस्याएँ हैं, बिल्कुल कपोल-कल्पित। मुल्ला को समझना चाहिए कि उसे अपनी पत्नी पर गोली दागने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह वास्तव में है ही नहीं। इसी तरह हम भी गहन मानसिक सनक से पीड़ित हैं। मन के कार्यों के बारे में हम अत्यधिक तनाव में रहते हैं। हम सोचते रहते हैं, 'मैं अवसादग्रस्त हूँ, मैं क्रोधित हूँ, मैं ईर्ष्या का शिकार हूँ।' अपने बारे में हम इस तरह क्यों सोचते रहते हैं? इसके बदले हम योग की विभिन्न क्रियाओं में क्यों नहीं डूबते?

कर्मयोग तुम्हारी ऐसी मानसिक समस्याओं में संतुलन लायेगा। ज्ञानयोग से यह संभव नहीं है क्योंकि जो लोग अपनी समस्याओं के प्रति अधिक सचेत एवं संवेदनशील हैं, ज्ञानयोग का अभ्यास करने पर उनका स्नायविक तनाव अधिक बढ़ जायेगा। ज्ञानयोग से अंतर्मुखता, विश्लेषण और चिन्तन-मनन की क्षमता में निखार आता है। ज्ञानयोग से चिन्तन-विश्लेषण की क्षमता में वृद्धि होगी तो तुम अपनी समस्याओं के बारे में अधिकाधिक सोचने लग जाओगे। कर्मयोग के अभ्यास से मानसिक समस्या संबंधी तुम्हारी सनक संतुलित होगी। क्रियायोग के मार्ग पर चलने वाले हर एक साधक को मैं यह संकेत दे दिया करता हूँ।

अनुभूति का जागरण

जब आंतरिक जागृति शुरू होती है तब मानसिक अनुभव कही जाने वाली हर चीज लुप्त हो जाती है। तब पूर्ण शान्ति आ जाती है। इस संबंध में एक कथा है। एक गुरु और शिष्य रात में सफर कर रहे थे। वे एक गुफा में आये और वहीं रात बिताना चाहते थे। चेला बड़ा डरपोक था। जब तब वह कह देता, 'गुरुजी, बड़ा अंधकार है, मुझे डर लग रहा है।' उसका डर दूर करने के लिए गुरु दियासलाई जला देते। थोड़ी देर चेला ठीक रहता, मगर अंधेरा होते ही फिर बड़बड़ाने लगता।

इस तरह रात भर गुरु दियासलाई जलाते गये। अंततः सुबह हुई, सूरज निकला और चेले के डर का भूत भाग खड़ा हुआ। इसी भाँति जब अनुभूति अवतरित होगी तब मन की सारी समस्याएँ मिट जायेंगी। तब तुम्हें लगातार दियासलाई की तीलियाँ जलाने की आवश्यकता नहीं होगी, क्योंकि उससे कोई मदद नहीं मिलने वाली। तुम विगत कई वर्षों से यही करते आ रहे हो, अब इसे बन्द करो।

राजयोग और भक्तियोग का मूल लक्ष्य

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

लोग राजयोग को मन का योग, और भक्तियोग को श्रद्धा एवं आराधना का योग मानते हैं। लेकिन वास्तव में भक्तियोग भावना का योग है। श्रद्धा-पूजा तो बहुत बाद में आई जब धर्म और सम्प्रदाय अस्तित्व में आए। उससे पहले भावनाओं को दिशान्तरित करना महत्त्वपूर्ण था और भक्तियोग की शुरुआत इसी से होती है। भक्तियोग के पारंपरिक और शास्त्रीय साहित्य में इसे आराधना के रूप में परिभाषित नहीं किया गया है। भक्त का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो शुद्ध और निष्कलंक है। उस अवस्था में आना ही भक्ति की प्राप्ति है।

वास्तव में राजयोग की अवधारणा महर्षि पतंजलि द्वारा नहीं, बल्कि उनसे हजारों साल पहले, राक्षसों के गुरु, ऋषि शुक्राचार्य द्वारा शुरू की गई थी। पौराणिक कथाओं में बताया गया है कि पुराने समय में तीन जातियाँ थीं – मानव जाति, देव जाति और राक्षस जाति। ये तीनों जातियाँ तीन अलग-अलग गुणों का प्रतिनिधित्व करती थीं। देव जाति सत्त्व का प्रतिनिधित्व करती थी – वे शुद्ध, दीप्तिमान्, सकारात्मक, समुचित और सृजनात्मक थे। राक्षसी जाति तमस् का प्रतिनिधित्व करती थी – वे अशुद्ध, दूषित, अशांत, असंतुलित, विनाशकारी स्वभाव के थे। मनुष्य रजस् का प्रतिनिधित्व करते थे, वे हमेशा कुछ-न-कुछ प्राप्त करने का प्रयास करते थे। ये तीन प्रकार के जीव थे जो पृथ्वी के शुरुआती दिनों में यहाँ निवास करते थे। आज भी ये तीन स्वभाव हर व्यक्ति के भीतर मौजूद हैं।

तामसिक स्वभाव के प्रबंधन के लिए ही भगवान शिव ने शुक्राचार्य को निर्देश दिया था कि 'राक्षसी प्रवृत्ति के लोगों को राजयोग सिखाओ, ताकि वे अपने स्वभाव और मन को समझ सकें, उसे सुधार सकें, उसमें सामंजस्य स्थापित कर सकें, उसे विकसित करके उसे प्रकाशित कर सकें।'

अवलोकन और विलय

पतंजलि-पूर्व राजयोग और पतंजलि-पश्चात् राजयोग के दर्शन में अंतर है। महर्षि पतंजलि द्रष्टा बनने की बात करते हैं। शुक्राचार्य द्रष्टा बनने की बात नहीं करते, बल्कि वे लय की बात करते हैं। महर्षि पतंजलि से पहले राजयोग

का पूरा दर्शन लय का था। जब नमक पानी में लीन हो जाता है तो वह पानी के साथ एकाकार हो जाता है। जब पानी को दूध में मिलाया जाता है तो दोनों में अंतर नहीं किया जा सकता। जब धूप की गन्ध हवा में मिल जाती है तो हवा की गुणवत्ता अलग हो जाती है। उसी तरह प्रकृति के विभिन्न आयामों का उच्च प्रकृति में विलय ही मूल राजयोग था।

महर्षि पतंजलि का राजयोग गृहस्थों के लिए, और शुक्राचार्य का राजयोग त्यागियों के लिए अधिक अनुकूल है। त्यागियों का उद्देश्य सर्वोच्च सत्ता के साथ विलय करना है, इसलिए वे शुक्राचार्य के राजयोग का अभ्यास करते हैं। जो लोग मनोचिकित्सा और मनोविश्लेषण करना पसंद करते हैं, वे अवलोकन करते हुए पतंजलि प्रणाली का पालन करते हैं।

इस प्रकार राजयोग में दो भिन्न परंपराएँ और शिक्षाएँ हैं। दोनों के बीच सामान्य कारक मन की जागरूकता है। पतंजलि चित्तवृत्तिनिरोध शब्द का उपयोग करते हैं, जिसका अनुवाद 'मन की वृत्तियों और परिवर्तनों को प्रबंधित करने' के रूप में किया जाता है। शुक्राचार्य मन के चार घटकों का एक-दूसरे में विलय करके परम अवस्था प्राप्त करने का उल्लेख करते हैं। मूल राजयोग में मनस् बुद्धि में विलीन हो जाएगा, बुद्धि चित्त में विलीन हो जाएगी, चित्त अहंकार में विलीन हो जाएगा, और अहंकार परम तत्त्व में विलीन हो जाएगा। जबकि पातंजल प्रणाली में आपको केवल यह देखने के लिए कहा जाता है कि आपकी सजगता की सतह पर क्या हो रहा है। आप जिस भी विचार, भावना या अन्तर्दृश्य का अवलोकन कर रहे हों, उसका विश्लेषण या अवलोकन करने से पहले उसे आपकी सजगता की सतह पर आना चाहिए, तभी आप इस बात से अवगत हो सकेंगे कि क्या हो रहा है।

संपूर्ण मन

यौगिक दृष्टिकोण से महत् यानि संपूर्ण मन को चार अलग-अलग घटकों या कार्यक्षेत्रों में विभाजित किया गया है। महत् महान् मन है, यह इस शरीर में निहित मन नहीं, बल्कि यह ब्रह्मांडीय मन है। अपने व्यष्टि रूप में यह हमारे भीतर मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार के रूप में निहित है, जो इसकी ब्रह्मांडीय क्षमता के एक प्रतिशत से अधिक नहीं है।

मनस् और बुद्धि – मनस् का कार्य है चिंतन करना, विचार करना, मनन करना। जब आप चिंतन और विश्लेषण कर रहे होते हैं, जब आप अपने

विचारों की दुनिया में होते हैं, उस समय मनस् सक्रिय होता है, और यह लगातार सक्रिय रहता है।

बुद्धि कोई सक्रिय घटक नहीं है। कई शास्त्र और विद्वान् कहते हैं कि एकमात्र चीज जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग करती है, वह है बुद्धि। वे कहते हैं, हमारे पास बुद्धि है जबकि पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों के पास बुद्धि नहीं है। उनके पास अन्य तीन घटक हैं, लेकिन बुद्धि नहीं है। वे यह भी कहते हैं कि बुद्धि मानव जीवन का वरदान है। ऐसे लोग भी हैं जो खुद को बुद्धिजीवी कहना पसंद करते हैं, यह संकेत देते हुए कि उनके पास उच्च बुद्धि है।

दरअसल, बुद्धि का इस्तेमाल तभी होता है जब आपको किसी कोने में धकेल दिया जाता है। विद्यार्थियों द्वारा बुद्धि का उपयोग सिर्फ परीक्षा के समय किया जाता है। उससे पहले उनकी पढ़ाई में कोई रुचि नहीं होती। बुद्धि तब तक काम नहीं आती जब तक आप मुश्किल हालात में न हों। बुद्धि ऐसी चीज है जो समय के साथ परिपक्व होती है। जब आप पैदा हुए थे तब आपके पास उतनी बुद्धि नहीं थी जितनी अब है।

बुद्धि की मौजूदगी के बावजूद इसका इस्तेमाल सीमित और प्रतिबंधित रहता है। सामान्य दैनिक व्यवहार में आप बुद्धि का इस्तेमाल नहीं करते। यहाँ तक कि आप अपने स्वार्थपूर्ण लाभ के लिए भी बुद्धि का इस्तेमाल नहीं करते। आप केवल अपनी इच्छा का अनुसरण करते हैं – 'मुझे यह चाहिए, मुझे इसकी जरूरत है'। यहाँ कोई बुद्धि नहीं है, कोई तर्क नहीं है। अगर किसी व्यक्ति को कुछ दिया जाता है तो अन्य व्यक्ति इस दान से प्रसन्न होने के बजाय सोचेगा, 'मुझे क्यों नहीं दिया जा रहा?' मैं किसी उदास व्यक्ति को देखकर मुस्कुरा देता हूँ तो दूसरा व्यक्ति सोचता है, 'स्वामीजी मुझे देखकर नहीं मुस्कुरा रहे हैं, मैंने क्या गलत कर दिया?'

सामान्य, रोजमर्रा की परिस्थितियों में आप अपनी बुद्धि का इस्तेमाल बिल्कुल नहीं करते। यह सिर्फ किताबों में लिखा है कि मनुष्य को बुद्धि का वरदान मिला है। वास्तव में बुद्धि के उस वरदान का इस्तेमाल कभी भी अपने चरित्र, आदतों, व्यवहार, विचारों, मन या जीवन की गुणवत्ता को सुधारने के लिए नहीं किया जाता। कई बार तो बुद्धि क्रोध, ईर्ष्या, घृणा और दुश्मनी जैसे दुर्गुणों को बढ़ाने का हथियार बन जाती है। ऐसी परिस्थितियों में इसका इस्तेमाल इस तरह किया जाता है, 'मैं अपने दुश्मन से कैसे बदला ले सकता हूँ?' लोग घंटों और दिनों तक इस बारे में सोचते रहते हैं, 'मैं अपने विरोधी

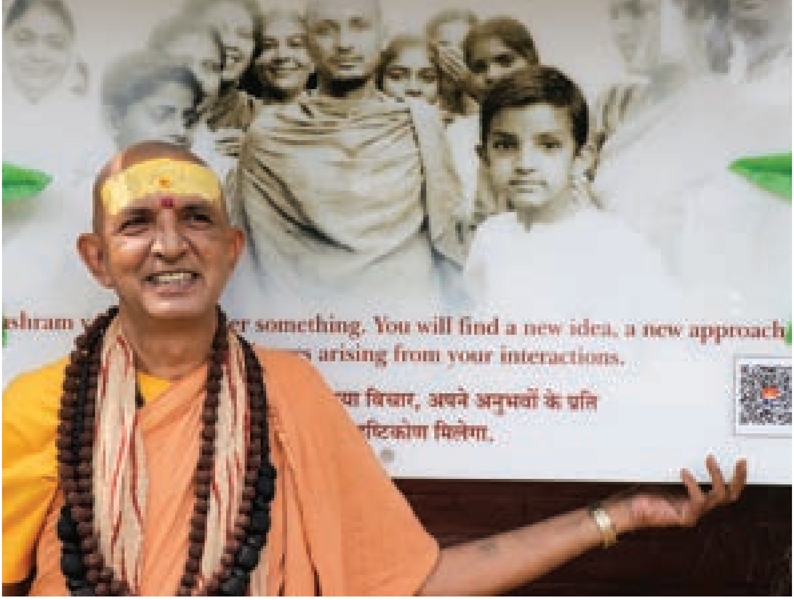

को कैसे इतना नुकसान पहुँचा सकता हूँ कि वह फिर कभी खुद को संभाल न सके?' यह बुद्धि का नकारात्मक प्रयोग है। 'मैं खुद को कैसे सुधार सकता हूँ?' – यह बुद्धि का सकारात्मक प्रयोग है जो केवल कपोल-कल्पना बनकर रह जाता है।

चित्त और अहंकार – जहाँ मन और बुद्धि आपके बाहरी व्यवहार के लिए जिम्मेदार हैं, वहीं चित्त और अहंकार जीवन के आंतरिक व्यवहार के लिए जिम्मेदार हैं। चित्त स्मृतियों, संस्कारों और कर्मों का भंडार है। यह वह 'क्लाउड' है जिसमें आपकी सारी जानकारी संगृहीत है। जब जरूरत हो आप अपने 'क्लाउड' तक पहुँच सकते हैं और जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यही चित्त है।

चित्त और अहंकार भावना-आधारित हैं जबकि मन और बुद्धि तर्क-आधारित हैं। ये दोनों भी जटिल तरीके से काम करते हैं। आपकी सारी प्रतिक्रियाएँ अहंकार जनित होती हैं, बुद्धि जनित नहीं। अगर आपको किसी कर्तव्य को पूरा करने के लिए सत्संग छोड़ना पड़े तो अहंकार तुरंत काम करने लगेगा, 'मैं क्यों जाऊँ?' बुद्धि लागू नहीं होगी कि 'मुझे यह कर्तव्य पूरा करना है'। 'सत्संग छोड़ने के लिए मुझे क्यों चुना गया' ऐसा नकारात्मक विचार अहंकार द्वारा उजागर किया जाएगा।

अहंकार हमेशा सक्रिय रहता है, क्योंकि उसे आपकी आत्म-छवि, आत्म-प्रतिष्ठा, आत्म-सम्मान की रक्षा करनी होती है। अहंकार का सबसे बड़ा

लक्षण यह है कि कोई भी कभी भी यह स्वीकार नहीं करेगा कि उसकी गलती है। यहाँ तक कि जब वे बड़ी-बड़ी गलतियाँ करते हैं, तब भी वे यह साबित करने के लिए पर्याप्त तर्क खोज लेते हैं कि वे गलत नहीं हैं। यह अहंकार खुद का बचाव कर रहा है, 'मैं चोट नहीं खाना चाहता। मैं पहचाना जाना चाहता हूँ। मैं अधिकार चाहता हूँ, लेकिन मुझे जिम्मेदारी नहीं चाहिए। मैं प्रतिबद्ध नहीं होना चाहता। मैं धर्म के मार्ग पर नहीं चलना चाहता, लेकिन मैं सब कुछ चाहता हूँ। कोई मुझे नहीं बता सकता कि मैं गलत हूँ। भगवान भी नहीं, गुरु भी नहीं।' यही अहंकार है। अहंकार हमेशा एक प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है, सोचा-समझा व्यवहार नहीं। यह प्रतिक्रिया आत्म-संरक्षण के लिए होती है जो सकारात्मक या रचनात्मक नहीं, बल्कि हमेशा नकारात्मक होती है।

चित्त वह भण्डार है जहाँ अहंकार, मन, बुद्धि और इन्द्रियों के क्षेत्र में होने वाली हर चीज एकत्र रहती है। अगर कोई आपसे आग में हाथ डालने को कहे तो आप कहेंगे, 'नहीं।' अगर वे पूछें कि क्यों, तो आप कहेंगे, 'आग से मेरा हाथ जल जायेगा।' आपको कैसे पता? क्या आपने कभी यह जानने के लिए आग में हाथ डाला है? फिर यह जानकारी कहाँ से आई? क्या आपने यह देखने के लिए कोई फाइल खोली कि आग जलाती है या नहीं? नहीं, यह चित्त ही था जिसने अपनी स्मृतियों से तुरंत उत्तर दिया कि ऐसा कुछ जला देता है। एक स्मृति कौंधी, 'आग जलाती है' और स्वाभाविक प्रतिक्रिया बन गई, 'नहीं, मैं अपना हाथ आग में नहीं डालूँगा।' इस तरह, आपकी स्मृतियाँ कई बार आपको एक खास तरीके से काम करने के लिए मजबूर करेंगी।

इन स्मृतियों में तर्क और भावना का मिश्रण होता है। चित्त तर्क और भावना का मिश्रण है, और साथ ही अहंकार भी; हालाँकि, अगर चित्त और अहंकार में तर्क 30 प्रतिशत और भावना 70 प्रतिशत है, तो मनस् और बुद्धि में तर्क 70 प्रतिशत और भावना 30 प्रतिशत है।

चित्त और वृत्ति

जब महर्षि पतंजलि चित्तवृत्तिनिरोध का उल्लेख करते हैं, तो वे चित्त के क्रिया-कलापों को प्रबंधित करने की बात करते हैं। चित्त जीवन का इंजन है। अगर चित्त नहीं है, तो बुद्धि, मनस् या अहंकार की कोई भूमिका नहीं होगी। आप उतने ही अज्ञानी होंगे जितने आप अपने जन्म के पहले दिन थे। आप अपना जीवन जीयेंगे, लेकिन कुछ भी याद नहीं रहेगा। हर पल, हर दिन एक

नए कार्य की तरह होगा जिसे आप करने की कोशिश कर रहे हैं। हर दिन आप अपना हाथ जला सकते हैं और याद नहीं रख सकते कि आग जलाती है।

महर्षि पतंजलि ने यहाँ एक और शब्द का प्रयोग किया है – वृत्ति। वृत्त का तात्पर्य एक गोलाकार रूप से है, और इसलिए वृत्ति का अर्थ हुआ भंवर। जब एक वृत्त इतना तीव्र हो जाता है कि उसके अंदर कई और वृत्त बन जाते हैं जो आपको अंदर खींचते हैं, तो वह वृत्ति है। वृत्त एक ऐसी वृत्ति बन जाती है जिससे कुछ भी बच नहीं सकता। एक उदाहरण, आप सबेरे उठते हैं और पाते हैं कि रसोई में कॉफी नहीं है। चिड़चिड़ापन शुरू हो जाता है, और यह दिनभर जारी रहता है जब तक आप अपना पहला कप नहीं पी लेते। कॉफी की कामना एक वृत्ति बन गई। 'मुझे कॉफी चाहिए' – यह लालसा, इच्छा, चिंता एक वृत्ति है। सड़क पर गाड़ी चलाते समय भी आप ऐसी जगह की तलाश करेंगे जहाँ आप रुककर एक कप कॉफी पी सकें। वृत्ति ने आपको अपने अंदर खींच लिया है और यह आपको छूटने नहीं देगी। पहले वृत्ति चिंता बनी, फिर वह चिंता चिड़चिड़ापन बन गई और अंत में वह चिड़चिड़ापन घबराहट बन गया। उस घबराहट ने पूरे दिन का मूड, पूरी मनोदशा को बदल दिया। अगर कोई आपके पास आकर कहे, 'क्या मैं आपसे कुछ पूछ सकता हूँ?' तो शायद आपका जवाब होगा, 'नहीं! मैंने अभी तक कॉफी नहीं पी है।'

ऐसी छोटी-छोटी बातों से ही वृत्तियाँ बनती हैं। वृत्ति मन की वह स्थिति है जो आपके व्यवहार को बदल देती है। आप दिन में कई वृत्तियों से गुजरते हैं। कभी आप प्रसन्न वृत्ति में होते हैं, इसलिए आप खुशी व्यक्त करते हैं। कभी आप आलोचना या चिड़चिड़ापन या क्रोध की वृत्ति में होते हैं। आप पूरे दिन में कम-से-कम तीन-चार सौ वृत्तियों से गुजरते हैं। हर घंटे, यहाँ तक कि हर मिनट मूड बदल सकता है। हर घंटे आपका व्यवहार, आपकी प्रतिक्रियाएँ अलग-अलग हो सकती हैं।

इस प्रकार वृत्ति एक ऐसी चीज है जो चित्त में उत्पन्न होती है और आपके व्यवहार को बदल देती है। यदि उस बदले हुए व्यवहार में आप स्वयं के साथ सामंजस्य या शांति की स्थिति में नहीं हैं, तो यह एक परेशान करने वाली वृत्ति है जिसे नियंत्रित किया जाना चाहिए। इसलिए, जब आप राजयोग का अभ्यास करते हैं तो आपको मनस् और बुद्धि से परे देखना होगा।

भक्ति की शुरुआत – आशा

अब हम भक्तियोग पर आते हैं। भक्तियोग को आम बोलचाल में उपासना के रूप में परिभाषित किया गया है। पर वास्तव में यह पूजा-पाठ का नहीं, भावना का योग है। भक्तियोग पर देवर्षि नारद और महर्षि शांडिल्य जैसे ऋषियों ने ग्रंथ लिखे हैं। देवर्षि नारद कहते हैं कि भक्ति का अभिप्राय भौतिक चश्मे को छोड़कर आध्यात्मिक चश्मा पहनना है। वे भक्ति को उस परम तत्त्व की सजगता के रूप में वर्णित करते हैं जिसकी छत्रछाया में हम सभी रहते हैं। मछलियाँ पानी में रहती हैं, और अगर आप पानी निकाल देंगे तो वे मर जाएँगी। नारद कहते हैं कि इसी तरह हम सभी परम तत्त्व रूपी जल में जीवित रहते हैं।

लोग आशा और उम्मीद के कारण जीवित रहते हैं, 'मुझे उम्मीद है कि मुझे कल खाना मिलेगा', 'मैं आशा करता हूँ कि मुझे जल्दी ही अपना वेतन मिल जाएगा क्योंकि मुझे अपना कर्ज चुकाना है', 'मुझे उम्मीद है कि मैं पर्याप्त रुपये जमा कर पाऊँगा, क्योंकि मैं अपने परिवार के साथ छुट्टी पर जाना चाहता हूँ'। यह उम्मीद ही है जो मनुष्य को जीवित रखती है, न कि उसकी क्षमता। अगर कोई आशा नहीं है, तो आप अपनी क्षमता का कभी उपयोग नहीं करेंगे। अगर कुछ करने या कुछ हासिल करने की उम्मीद है, तभी आप उसे करने की कोशिश करेंगे। जब वह आशा ईश्वर से जुड़ती है तो वह भक्ति होती है, और जब वह संसार से जुड़ती है तो कामना होती है – 'मैं धन अर्जित करना चाहता हूँ, मैं एक अच्छा घर चाहता हूँ, मैं एक अच्छी मोटरगाड़ी चाहता हूँ'। आशा इच्छा में बदल रही है – 'यह मेरी चाहत है, यह मेरी जरूरत है। एक दिन मुझे यह मिलने की उम्मीद है।'

जिस चीज की मैंने आशा की थी, वह अब इच्छा बन गई है और वह इच्छा अब उस चीज को पाने की प्रेरणा बन जाती है। इस आशा को सांसारिक आयाम से हटाकर दिव्य आयाम से जोड़ना होगा। जब आशा उस परम, दिव्य आयाम से जुड़ती है, तब वह भक्ति बन जाती है। ईसाई संतों ने भी इसी बात का संकेत दिया है – 'हे ईश्वर! तेरी इच्छा पूरी हो'। उन्होंने यह नहीं कहा कि 'ईश्वर, मेरी इच्छा पूरी हो।' सांसारिक मानसिकता की स्थिति में व्यक्ति कहता है – 'मेरी इच्छा पूरी हो। भगवान, मैं यह चीज चाहता हूँ और आपको इसे प्राप्त करने में मेरी मदद करनी है।' भक्ति की स्थिति में, जहाँ आशा दिव्य तत्त्व से जुड़ी है, यह भावना होती है कि 'प्रभु, तुम्हारी इच्छा पूरी हो।' मैं हर संभव प्रयास कर रहा हूँ, लेकिन मेरा ऐसा किसी सांसारिक चीज के साथ

कोई व्यक्तिगत संबंध, लगाव, लालसा या बंधन नहीं है जो मुझे मेरे आंतरिक प्रकाश से दूर ले जा सके।

भक्ति आशा से शुरू होती है, मंत्र से नहीं, और न ही ईश्वर की जानकारी से। जब भी आप जीवन में आशा से जुड़ते हैं तो वह भक्ति की शुरुआत होती है। जब वह आशा भौतिक चीजों के लिए होती है, तो वह इच्छाओं का निर्माण करती है और जब वह आध्यात्मिक तत्त्व के लिए होती है, तो वह इच्छाओं का निर्मूलन करने लगती है।

जैसे-जैसे इच्छाएँ समाप्त होती जाती हैं, मन अधिक शांत और स्थिर होते जाता है, उसके विक्षेप कम होते जाते हैं। तब वह एकाग्र होकर उस तत्त्व पर ध्यान केंद्रित करता है जिसने आपको पूर्णता, शांति, आनंद और सामंजस्य की अनुभूति दी है। और उसी तत्त्व को ईश्वर के रूप में जाना जाता है।

ईश्वर शब्द सबसे पहले सृजन की संभावना को दर्शाता है। मनुष्य इस सृष्टि के सबसे निचले पायदान पर है, क्योंकि हम स्थूल, भौतिक आयाम में हैं। इससे परे सूक्ष्म आयाम है, वहाँ भी वह व्यापक ईश्वरीय ऊर्जा सक्रिय है, भले ही हम उसे देख नहीं सकते। सूक्ष्म से परे कारण आयाम है, वहाँ भी ईश्वरीय ऊर्जा सक्रिय है, हालाँकि हम उसे अनुभव नहीं कर सकते। सूक्ष्म और कारण आयाम से परे भी ईश्वरीय ऊर्जा तैर रही है, पर हम उसे देख नहीं सकते। हम सूक्ष्म, कारण या पारलौकिक आयामों में ईश्वर को देख नहीं सकते, फिर भी हम इस स्थूल आयाम में ईश्वर को अनुभव करना चाहते हैं, और ऐसा होने वाला नहीं है। यदि आप ईश्वर को वाकई महसूस करना चाहते हैं, तो आपको स्थूल से सूक्ष्म, कारण और पारलौकिक आयामों में जाना होगा। यही भक्तियोग की शिक्षा है।

भक्तियोग में मन का मुख्य गुण प्रेम है। नारद भक्ति सूत्रों में कहा है – *सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा* – वह भक्ति और कुछ नहीं, बल्कि परमप्रेम है। यहाँ ईश्वर के प्रति प्रेम की बात नहीं कही गयी, बल्कि कहा गया है कि भक्ति वह प्रेम है जो आप अपने अंदर विकसित कर सकते हैं और जो आपको हर चीज से जोड़ेगा। भक्ति की कितनी सुंदर परिभाषा है यह! जब यह परम और पूर्ण प्रेम प्रकट होता है, तब द्वैत समाप्त हो जाता है। सभी भेद समाप्त हो जाते हैं, और मन और भावनाएँ एक साथ मिल जाती हैं। जब तक मन और भावनाएँ अलग-अलग हैं, तब तक आप स्थूल, सूक्ष्म और कारण के बारे में जानते हैं। जिस क्षण मन और भावनाएँ एक हो जाती हैं, आप पारलौकिक क्षेत्र में चले जाते हैं।

– 12 दिसंबर 2017, योग चक्र कार्यक्रम, गंगा दर्शन

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान SB Collect Online Donation Facility के माध्यम से इस **QR code** को स्कैन करके दिया जा सकता है।

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग**, **बिहार योग भारती**, **योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

योग चक्र 5 – हठयोग का सम्पूरक – कर्मयोग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 74, ISBN: 978-93-48677-63-1

इन सत्संगों का विषय कर्मयोग और हठयोग है, जो षडंग योग चक्र के दो अहम अंग हैं। स्वामीजी ने दर्शाया कि कैसे योग चक्र में हठयोग और कर्मयोग एक-दूसरे के सम्पूरक हैं और समानांतर लक्ष्य रखते हैं। अंततः ये उस अवस्था तक ले जाते हैं जहाँ शरीर, मन और हर कर्म में हल्केपन का अनुभव होता है, तथा हर कर्म एक अवसर बन जाता है – सीखने और आगे बढ़ने का, स्वधर्म को पहचानने का, उत्कृष्ट प्रदर्शन का, परम तत्त्व का अनुभव करने का, और एक समर्पित, सुखमय जीवन जीने का।

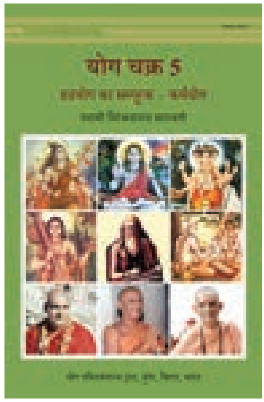

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 9162783904, 9835892831

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

BIHAR YOGA

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2025

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जनवरी–दिसम्बर	*आश्रम जीवन प्रशिक्षण*
सितम्बर 22–30	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 3–11	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
नवम्बर 1–15	*प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण*
नवम्बर 16–जनवरी 30 2026	*संन्यास अनुभव (राष्ट्रीय/अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर 1–दिसम्बर 31	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

कार्यक्रम

जून 23–जुलाई 9	*वेद पारायण*

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*
प्रत्येक 12 तारीख	*अखण्ड रामचरितमानस पाठ*

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें